इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKC-104
गीता में आत्मप्रबन्धन

''शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतन्त्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।''

– इन्दिरा गाँधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKC-104
गीता में आत्मप्रबंधन

खण्ड 1	गीता परिचय	7
खण्ड 2	इन्द्रियनिग्रह	79
खण्ड 3	निष्काम कार्मयोग	107
खण्ड 4	मन पर नियंत्रण के उपाय	157

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति, श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

निदेशक मानविकी विद्यापीठ
प्रो. कौशल पंवार
इग्नू मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कला संकाय
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. रमाकान्त पाण्डेय
निदेशक, मुक्त स्वाध्याय पीठ
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. रंजन कुमार त्रिपाठी
प्रोफ्रेसर, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक एवं सम्पादक

प्रो. (डॉ.) कौशल पंवार
संस्कृत संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या
डॉ. गीता यादव, सहायक आचार्य संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय बावल, रेवाड़ी हरियाणा	खंड 1 (इकाई 1,2,3,4,5)
डॉ. मेघराज मीणा, सहायक आचार्य संस्कृत विभाग शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	खण्ड 2 (इकाई 6,7,8,9)
डॉ. श्रुति राय, सहायक आचार्य संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	खण्ड 3 (इकाई 10,11,12,13)
डॉ. उमाशंकर, सहायक आचार्य संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली	खण्ड 4 (इकाई 14,15,16,17,18,19,20)

सचिवालयीय सहयोग

श्री अनिल कुमार, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुल सचिव (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

अगस्त, 2022

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2022

ISBN- 978-93-5568-489-9

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक : चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली–110092

विषय सूची

खण्ड 1	**वैदिक साहित्य**	**7**
इकाई 1	गीता का अभिप्राय और प्रयोजन	9
इकाई 2	गीता में प्रतिपादित विषय	18
इकाई 3	गीता में अध्याय विभाजन और संक्षिप्त विवरण	36
इकाई 4	गीता का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व	53
इकाई 5	गीता की मुख्य शिक्षाएँ	66
खण्ड 2	**इन्द्रिय निग्रह**	**79**
इकाई 6	इन्द्रियों का अभिप्राय, संख्या तथा स्वभाव	81
इकाई 7	मन सहित इन्द्रिय निग्रह की आवश्यकता	91
इकाई 8	गीता में इन्द्रियनिग्रह व इन्द्रियनिग्रह फल	96
इकाई 9	गीता में स्थितधी की प्रशंसा	101
खण्ड 3	**निष्काम कार्मयोग**	**107**
इकाई 10	पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा	109
इकाई 11	निष्काम कर्मयोग का अभिप्राय और फल	123
इकाई 12	गीता में कर्मयोग की प्रशंसा	139
इकाई 13	भारतीय संस्कृति में निष्काम कर्मयोग की प्रशंसा के उद्धरण	151
खण्ड 4	**मन पर नियंत्रण के उपाय**	**157**
इकाई 14	ध्यान (6/1–26) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या	159
इकाई 15	आहार नियंत्रण (17/8–10) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या	168
इकाई 16	काम नियंत्रण (3/36–40) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या	172
इकाई 17	अहंकार त्याग (2/7, 47), (9/27, 8/7, 11/55)	176
इकाई 18	नैतिक गुणों का विकास (12/11, 13 – 19, 9/11) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या	180
इकाई 19	शारीरिक और मानसिक अनुशासन (17/14–19, 6/36) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या	186
इकाई 20	संतुलित जीवन (3/8, 6/16–17) श्लोक, अनुवाद और व्याख्या	191

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम परिचय

बी.ए. आनर्स संस्कृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आप 'गीता में आत्मप्रबंधन' नामक पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं। 'गीता में आत्मप्रबंधन' का यह पाठ्यक्रम 4 खण्डों में विभाजित है। यह पाठ्यक्रम 06 क्रेडिट का है जिसमें 20 इकाइयाँ है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको गीता में दिए गए आत्मप्रबंधन से परिचित कराना है जिसके आधार पर आप गीता का परिचय, इन्द्रियनिग्रह, निष्काम कर्मयोग तथा मन पर नियंत्रण के उपायों को समझने की क्षमता का विकास कर सकेंगे।

प्रथम खण्ड की 5 इकाइयों में आप 'गीता के परिचय' का अध्ययन करेंगे। सामान्यतया किसी विषय का अध्ययन प्रारंभ करते हुए उसके काल का प्रथम दृष्टतया क्रमिक विकास और इतिहास से परिचित होना आवश्यक होता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड में गीता का अभिप्राय और प्रयोजन, गीता में प्रतिपादित विषय, गीता का अध्याय विभाजन और संक्षिप्त विवरण का अध्ययन किया गया है। साथ ही साथ गीता के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व के बारे में बताया गया है एवं गीता की मुख्य शिक्षाओं का परिचय भी दिया गया है जिसका आप विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

गीता में आत्मप्रबंधन के दूसरे खण्ड में 4 इकाइयों के द्वारा 'इन्द्रियनिग्रह' को स्पष्ट किया गया है। इन्द्रियों का अभिप्राय, संख्या तथा स्वभाव को स्पष्ट करते हुए मन सहित इन्द्रियनिग्रह की आवश्यकताओं का वर्णन किया गया है। इस खण्ड की इकाई में गीता में इन्द्रियनिग्रह व इन्द्रियनिग्रह फल को स्पष्ट किया गया है। इस खण्ड की इकाइयों में आप गीता में स्थितधी की प्रशंसा का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे तथा इसमें आप इन्द्रियों के द्वारा मन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

तीसरा खण्ड 'निष्काम कर्मयोग' से संबंधित है। भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। इसको ध्यान में रखकर इस खण्ड की 4 इकाइयों में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा का वर्णन करते हुए निष्काम कर्मयोग का अभिप्राय तथा फल के बारे में विस्तारपर्वूक बताया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को स्पष्ट करते हुए गीता में आत्मप्रबंधन में कर्मयोग की प्रशंसा की गई है। भारतीय संस्कृति में निष्काम कर्मयोग की प्रशंसा को उद्धरणों के द्वारा स्पष्ट किया गया है। अतः इन्हें अधिगम करके आप भारतीय जीवन मूल्यों को समझेंगे।

चतुर्थ खण्ड मन पर नियंत्रण के उपायों से सम्बंधित है। इस खण्ड की इकाइयों में आप 'मन पर नियंत्रण' के उपायों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। यहाँ पर श्लोकों के माध्यम से ध्यान, आहार नियंत्रण, काम नियंत्रण तथा अहंकार त्याग को स्पष्ट किया गया है। इसके अध्ययन के पश्चात आप मन पर नियंत्रण के उपायों के माध्यम से नैतिक गुणों का विकास करेंगे। शारीरिक, मानसिक अनुशासन तथा संतुलित जीवन को जीने के उपायों का अध्ययन इसमें करेंगे। स्पष्टतया इस पाठ्यक्रम में भगवतगीता में आत्म पर नियंत्रण करके स्वयं का प्रबंधन कैसे हो? इस पर विस्तापूर्वक प्रकाश डाला गया है जिसको पढ़कर आप भगवद्गीता के साररूप को समझने में सक्षम होंगे।

आशा है कि BSKC-104 'गीता में आत्मप्रबंधन' का यह पाठ्यक्रम आपको गीता का विस्तृत परिचय, इन्द्रियनिग्रह पर नियंत्रण, निष्काम कर्मयोग तथा मन पर नियंत्रण के उपायों को जानने व समझने में सहायक होगा।

अतः पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री निम्न ढंग से प्रस्तुत की गई है–

गीता परिचय	–	5 इकाइयाँ
इन्द्रियनिग्रह	–	4 इकाइयाँ
निष्काम कर्मयोग	–	4 इकाइयाँ
मन पर नियंत्रण के उपाय	–	7 इकाइयाँ
		कुल – 20 इकाइयाँ

शुभकामनाओं के साथ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड–1 : गीता परिचय

इकाई – 1	गीता का अभिप्राय और प्रयोजन	
इकाई – 2	गीता में प्रतिपादित विषय	
इकाई – 3	गीता में अध्याय विभाजन और संक्षिप्त विवरण	
इकाई – 4	गीता का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व	
इकाई – 5	गीता की मुख्य शिक्षाएँ	

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 परिचय

बी.ए. आनर्स संस्कृत पाठ्यक्रम का यह प्रथम खंड है जिसका नाम गीता परिचय है। इस खण्ड में पाँच इकाइयां है। इस खण्ड की सभी इकाइयाँ भगवद्गीता नामक धार्मिक ग्रन्थ से सम्बन्धित है। यद्यपि भगवद्गीता का व्यापक प्रकाश व पठन होता रहा है, किन्तु मूल रूप से यह संस्कृत महाकाव्य महाभारत की एक उपकथा के रूप में प्राप्त होता है। भगवतगीता का उपदेश कृष्ण ने अर्जुन को दिया था। भगवद्गीता के वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण है। इस खण्ड में आप गीता का अभिप्राय और गीता का प्रयोजन, गीता में प्रतिपादित विषय, गीता के अध्यायों का विभाजन व उसका संक्षिप्त विवरण, गीता का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व तथा गीता की मुख्य शिक्षाओं का अध्ययन करेंगे।

तकनीकी और कठिन शब्दों को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक इकाई में आवश्यक शब्दावली दी गई है। साथ ही अध्ययन में सहायक उपयोगी पुस्तकों की सूची प्रत्येक इकाई के अन्त में दी गई है। इन पुस्तकों को सहयोग लेकर आप सम्बन्धित विषय का और अधिक अध्ययन कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 गीता का अभिप्राय और प्रयोजन

इकाई की रूप रेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 महाभारत का सामान्य परिचय

1.3 गीता का अभिप्राय

1.4 गीता का परिचय

1.5 गीता का प्रयोजन

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई में अध्ययन के पश्चात् आप

- महाभारत के शान्ति पर्व में वर्णित वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।
- गीता के परिचय का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- गीता के प्रयोजन का ज्ञान प्राप्त करेंगें।
- गीता का महत्त्व व हमारे जीवन में इनके योगदान का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली का स्मरण कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रथम खण्ड की इस प्रथम इकाई के अन्तर्गत गीता का अभिप्राय और प्रयोजन दिया गया है। गीता को विश्व की सबसे प्राचीन जीवित संस्कृति, भारत की महान धार्मिक सभ्यता के प्रमुख साहित्यिक प्रमाण के रूप में देख सकते है। भगवद्गीता को गीतोपनिषद भी कहते है क्योंकि यह वैदिक ज्ञान का सार है और वैदिक साहित्य का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उपनिषद भी है। अतः इस इकाई में महाभारत का सामान्य परिचय, श्रीकृष्ण का परिचय, गीता का अभिप्राय, गीता का प्रयोजन व इसके वैशिष्ट्य का अध्ययन किया जाएगा जिसके माध्यम से सम्पूर्ण भगवद्गीता को समझने में सहायता मिलेगी।

1.2 महाभारत का सामान्य परिचय

महाभारत व्यास द्वारा रचित है। यह 18 पर्वों में विभक्त है तथा इसमें एक लाख श्लोक है। श्रीमद्भगवद्गीता मूल रूप से संस्कृत महाकाव्य महाभारत की एक उपकथा

है। महाभारत में वर्तमान कलियुग तक की घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इसी युग के प्रारम्भ में भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मित्र तथा भक्त अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश दिया था।

कृष्ण तथा अर्जुन की यह बातचीत मानव इतिहास की सबसे महान दार्शनिक तथा धार्मिक बातचीत में से एक है। उस महायुद्ध के शुभारम्भ के पूर्व हुई धृतराष्ट्र के 100 पुत्रों तथा उनके चचेरे भाई पाण्डु पुत्रों के मध्य में होने वाला भातृघातक संघर्ष था।

धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाई थे, इनका जन्म कुरूवंश में हुआ था और ये राजा भरत के वंशज थे जिसके नाम पर ही महाभारत का नाम पड़ा। धृतराष्ट्र बड़ा भाई था, लेकिन वह जन्म से दृष्टिहीन था। इसलिए राजसिंहासन उसे न मिलकर उसके छोटे भाई पाण्डु को प्राप्त हुआ। पाण्डु की मृत्यु अल्पायु में हो गई थी इसलिए उसके पाँच पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव धृतराष्ट्र की देखरेख में रख दिए गए थे। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। इस तरह धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्र एक ही राजमहल में बड़े हुए। दोनों को ही गुरु द्रोणाचार्य द्वारा सैन्यकला का प्रशिक्षण दिया गया और पूज्य भीष्म पितामह उनके परामर्शदाता थे।

धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन पाण्डवों से घृणा और ईर्ष्या करता था। दृष्टिहीन दुर्बलहृदय धृतराष्ट्र पाण्डुपुत्रों के स्थान पर अपने पुत्रों को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इस तरह धृतराष्ट्र की सहमति से दुर्योधन ने पाण्डु के युवा पुत्रों की हत्या करने का षड्यन्त्र रचा और पाँचों पाण्डव अपने चाचा विदुर तथा अपने ममेरे भाई भगवान् कृष्ण के संरक्षण में रहने के कारण अनेक बार प्राणघातक आक्रमणों के पश्चात् भी अपने प्राणों को सुरक्षित रख पाये।

भगवान कृष्ण कोई सामान्य व्यक्ति नहीं थे, ये अपितु साक्षात् परमेश्वर हैं जिन्होंने इस धरा पर अवतार लिया था और अब एक समकालीन राजकुमार की भूमिका निभा रहे थे तथा वह पाण्डवों की माता कुंती के भतीजे भी थे। इस तरह वह सम्बन्धी के रूप में तथा धर्म के रक्षक होने के कारण वे धर्मपरायण पाण्डुपुत्रों का पक्ष लेते रहे और उनकी रक्षा भी करते रहें। किन्तु चतुर दुर्योधन ने पाण्डवों को द्यूतक्रीड़ा के लिए ललकारा। उस स्पर्धा में दुर्योधन तथा उसके भाइयों ने पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी पर अधिकार प्राप्त कर लिया और फिर उसे राजाओं तथा राजकुमारों की सभा के मध्य नग्न करने का प्रयास किया कृष्ण ने दिव्य हस्तक्षेप से उसकी रक्षा की उसके पश्चात् एक और द्यूतक्रीड़ा में छल के प्रयोग के कारण पाण्डवों की हार हुई तथा उन्हें तेरह वर्ष के लिए वनवास जाना पड़ा।

वनवास से लौटकर पाण्डवों ने धर्मसम्मत विधि से दुर्योधन से अपना राज्य माँगा किन्तु उसने देने से इंकार कर दिया। क्षत्रिय शास्त्र में बताए गए कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए पाँच गाँवों की माँग रखी। किन्तु दुर्योधन ने सूई की नोक भर भी भूमि देने के लिए इन्कार कर दिया। इसलिए उनके लिए युद्ध करना जरूरी हो गया। विश्वभर के राजकुमारों में से कुछ कौरवों के पक्ष में थे तो कुछ पाण्डवों के पक्ष में थे। उस समय कृष्ण स्वयं पाण्डुपुत्रों के शान्तिदूत बनकर शान्ति का सन्देश लेकर धृतराष्ट्र की राज्य सभा में गये। जब उनकी याचना अस्वीकार कर दी गई, तो युद्ध होना निश्चित था।

अत्यन्त सच्चरित्र पाँचों पाण्डवों ने कृष्ण को पुरुषोत्तम भगवान के रूप में पहचान लिया था। किन्तु धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्र उन्हें पहचान नहीं पाए थे फिर भी कृष्ण ने विपक्षियों की इच्छानुसार ही युद्ध में सम्मिलित होने का प्रस्ताव रखा। वे ईश्वर के रूप में युद्ध नहीं करना चाहते थे लेकिन जो भी उनकी सेना का उपयोग करना चाहे कर

सकता था। प्रतिबन्ध यह था कि एक ओर कृष्ण की सम्पूर्ण सेना होगी और दूसरी ओर वे स्वयं एक परामर्शदाता व सहायक के रूप में उपस्थित होंगे। राजनीति में चतुर दुर्योधन ने आतुरता से कृष्ण की सेना झपट ली। जबकि पाण्डवों ने भी उतनी ही आतुरता से श्रीकृष्ण को ग्रहण किया।

इस प्रकार कृष्ण अर्जुन के सारथी बने और उन्होंने उस सुप्रसिद्ध धनुर्धर का रथ हांकना स्वीकार किया। इसी प्रकार हम उस बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जहाँ से भगवद्गीता का शुभारम्भ होता है दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार खड़ी है।

1.3 गीता का अभिप्राय

श्रीमद्भगवदगीता की महिमा अगाध और असीम है। भगवद्गीता एक बहुत ही अलौकिक और विचित्र ग्रन्थ है। इसमें पाठक के लिए उपयोगी पूरी सामग्री मिलती है। चाहे वह पाठक किसी भी देश का, किसी भी वंश का, किसी भी समुदाय का, सम्प्रदाय का, किसी भी वर्ण का या आश्रम का व्यक्ति क्यों न हो? क्योंकि इसमें किसी समुदाय विशेष की निन्दा या प्रशंसा नहीं की गई है। इसमें वास्तविक तत्वों का वर्णन किया है। इस छोटे से ग्रन्थ में इतनी विलक्षणता है कि इसको पढ़ने वाला व्यक्ति इसमें आकर्षक हो जाता है। यह ग्रन्थ मानवता के लिए कल्याणकारी ग्रन्थ है। कोई भी मनुष्य यदि भगवदगीता का थोड़ा–थोड़ा भी अध्ययन करें तो वह अपने जीवन में आई समस्या का समाधान कर सकता है तथा अपना उद्धार भी कर सकता है। हर एक दर्शन के अलग–अलग अधिकारी होते है पर भगवद्गीता के वे सभी अधिकारी होते है जो अपना कल्याण चाहते हैं।

इस मानव समाज में कृष्ण भावनामृत आन्दोलन जरूरी है क्योंकि यह जीवन की चरमसिद्धि को प्रदान करने वाला है। प्रत्येक व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि ईश्वर कितने महान है और जीवों की वास्तविक स्थिति क्या है ? प्रत्येक व्यक्ति को यह जान लेना चाहिए कि जीव ''नित्य'' है। जब तक वह इस ईश्वर की सेवा नहीं करेगा तब तक वह जन्म–मृत्यु के बन्धन में फसता रहेगा। यह एक महान विज्ञान है और हर प्राणी को अपने हित के लिए इस ज्ञान को सुनना चाहिए।

भगवद्गीता का अभिप्राय यही है कि मानव को भौतिकता के चंगुल से छुड़ाना, क्योंकि व्यक्ति को यही लगता है कि मौलिक सुख सुविधाओं की प्रगति से ही मानव सुखी बन सकेगा। जबकि वह यह नहीं समझाता कि भौतिक प्रकृति अत्यन्त प्रबल है।

भगवद्गीता में स्वयं भगवान ने अपने आपको परम पुरुषोत्तम भगवान कहा है। भगवद्गीता भगवान ने जैसे बताई है वैसे ही स्वीकार करनी चाहिए। भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में (4. 1–3) भगवान् कहते हैं

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विस्तवान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।। 4/1
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।। 4/2
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि में सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।। 4/3

यहाँ पर भगवान अर्जुन को सूचित करते हैं कि भगवद्गीता की यह योगपद्धति सर्वप्रथम सूर्यदेव को बताई गई। सूर्यदेव ने इसे मनु को बताया और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को बताया। इस प्रकार परम्परा द्वारा यह योगपद्धति एक वक्ता से दूसरे वक्ता तक पहुँचती रही है। लेकिन कालान्तर में यह छिन्न–भिन्न हो गई। इसलिए भगवान् को इसे फिर से बताना पड़ रहा है। अब यह अर्जुन को कुरूक्षेत्र के युद्धस्थल में बताना पड़ा है।

वे अर्जुन से कहते है कि मैं तुम्हें परम रहस्य प्रदान कर रहा हूँ क्योंकि तुम मेरे भक्त तथा मित्र हो। अध्यात्मवाद की तीन श्रेणियाँ है – ज्ञानी, योगी तथा भक्त। यहाँ पर भगवान अर्जुन से स्पष्ट कहते है कि वे उसे एक नवीन गुरु–परम्परा का प्रथम पात्र बना रहे हैं क्योंकि प्राचीन परम्परा खण्डित हो गई थी। अतः यह भगवान की इच्छा थी कि सूर्यदेव से चली आ रही विचारधारा की दिशा में ही अन्य परम्परा स्थापित की जाए। कृष्ण जी चाहते थे कि अर्जुन भगवद्गीता ज्ञान का प्रमाणिक विद्वान बने। अतएव हम देखते हैं कि भगवद्गीता का उपदेश अर्जुन को विशेष रूप से दिया गया था। वास्तव में मनुष्य हम अपने शरीर से नहीं, अपितु अपने मन तथा बुद्धि से कर्म करते हैं। यदि मन और बुद्धि सदैव इस ईश्वर के ध्यान में मग्न रहे तो स्वाभाविक है कि इन्द्रियाँ भी उनकी सेवा में लगी रहेंगी। इन्द्रियों के कार्य बाहर से तो वे ही रहते है लेकिन चेतना बदल जाती है। भगवद्गीता हमें सिखाती है कि किस प्रकार मन तथा बुद्धि को भगवान् के विचार में लीन रखा जाए। यही भगवद्गीता का रहस्य है।

आज के मनुष्य ने चन्द्रमा तक पहुंचने के लिए तो कठोर संघर्ष किया लेकिन अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए कठिन प्रयास नहीं किया। यदि मनुष्य को पचास वर्ष आगे जीना है तो उसे चाहिए कि उस थोड़े समय को भगवान का स्मरण करने के अभ्यास में लगाए। यह अभ्यास ही भक्तियोग है।

भगवान् आगे कहते है कि –

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।। (8.8)

हे अर्जुन ! जो व्यक्ति अपने पथ से विचलित हुए बिना अपने मन को निरन्तर मेरे स्मरण में व्यस्त रखता है और भगवान् के रूप में मेरा ध्यान करता है, वह मुझको अवश्य प्राप्त होता है।

इस ज्ञान के द्वार सभी के लिए खुले हुए है। सभी श्रेणी के लोग भगवान् कृष्ण का चिन्तन करके उनके पास पहुँच सकते हैं। क्योंकि उनका श्रवण और चिन्तन हर एक के लिए संभव है। उसे अत्यधिक विकसित बुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़ती जो कोई भी भक्तियोग के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं और परमेश्वर को जीवन के आश्रम तत्व सर्वोच्च लक्ष्य या चरम लक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है। वह आध्यात्मिक आकाश में भगवान तक पहुँच सकता है। यदि कोई भगवद्गीता में बताये गए सिद्धान्तों को ग्रहण करता है तो वह अपना जीवन पूर्ण बना सकता है और जीवन की सारी समस्याओं का स्थायी हल उसे मिल जाता है। यही भगवद्गीता का अभिप्राय है।

1.4 गीता का परिचय

श्रीभगवद्गीता विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के 'भीष्मपर्व' का एक अंश है गीता भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में अर्जुन को दिया हुआ दिव्य

उपदेश ने गीतारूपी अमृतवाणी का उपदेश दिया। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् की साक्षात् दिव्य वाणी होने से इसके श्लोकों को मंत्र का दर्जा प्राप्त है। श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं इसके वक्ता है। उनका कहना है कि हे अर्जुन गीता मेरा हृदय है इस प्रकार गीता को 'सर्वशास्त्रमयी' कहा गया है। क्योंकि सभी शास्त्रों का मंथन करके अमृतमयी गीता का उदय हुआ है। इसका दिव्य किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय के लिए न होकर सम्पूर्ण मानवजाति के लिए है। प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत भगवद्गीता, ब्राह्मण और उपनिषद् आते हैं। इससे गीता का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। गीता में ब्रह्मसूत्र और उपनिषद दोनों का ही तात्पर्य आ जाता है। गीता एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण वेदों का सारसंग्रह किया गया है। स्वयं वेदव्यास ने कहा है कि –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।। महाभारत (भीष्मपर्व 43/1)

अर्थात् गीता का ही भली प्रकार से श्रवण मनन कीर्तन पठन–पाठन और धारण करना चाहिए, अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि वह स्वयं भगवान के साक्षात् मुख–कमल से निकली हुई है।

गीता की महिमा बतलाते हुए भगवान स्वयं कहते हैं कि गीता गंगा से बढ़कर है। शास्त्रों में गंगा स्नान का जल मुक्ति का बतलाया गया है किन्तु गंगा में स्नान करने वाला स्वयं तो मुक्त हो सकता है, लेकिन दूसरों को मुक्त करने का सामर्थ्य नहीं रखता। किन्तु गीता रूपी गंगा में स्नान करने वाला स्वयं तो मुक्त होता ही है और दूसरों को भी मुक्त करने में समर्थ होता है। गीता की महिमा बतलाते हुए कहा भी गया है कि–

गीता पुस्तक संयुक्तः प्राणास्त्यक्त्वा प्रयातियः।
वैकुण्ठं समवाप्नोति विष्णुना सह मोदते।। (वराह पुराण)

अर्थात् जो व्यक्ति गीता की पुस्तक लिए हुए प्राणत्याग कर देता है, वह वैकुण्ठ धाम जाकर विष्णु के साथ आनन्द भोगता है। इस प्रकार गीता साक्षात् ईश्वर का दर्शन है। ईश्वर दर्शन के लिए गीता से बढकर कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं है।

''गीताभाष्य पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुतमाम्।'' (वराहपुराण)

इस प्रकार इस संसार में गीता जैसा कोई ग्रन्थ नहीं है। गीता मानव जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें 18 अध्याय व 700 श्लोक है। जिसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के माध्यम से भगवान् अर्जुन के द्वारा हम सभी को उपदेश दिया है कि किस प्रकार मनुष्य अपना कर्म करते हुए भी मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। इन 700 श्लोक में से एक श्लोक धृतराष्ट्र ने कहा है। संजय ने 41 श्लोक कहे हैं, अर्जुन ने 84 श्लोक कहे हैं तथा भगवान् ने 574 श्लोक कहे हैं। यह लगभग 5000 साल पहले महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित है। यह महाभारत का एक महत्त्वपूर्ण अंश है जो भीष्म पर्व में संकलित है। इस प्रकार गीता के जैसा पूरे विश्व में कोई ग्रन्थ नहीं है। यह प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन पढ़नी चाहिए। क्योंकि हर प्राणी प्रकृति के कठोर नियमों के द्वारा बंधा हुआ है। सौभाग्य से जीवन भगवान का अंश–रूप है। इसलिए उसका सहज कार्य है भगवान् की सेवा करना। लेकिन मोह के कारण मनुष्य विभिन्न प्रकार से अपनी इन्द्रियों की तृप्ति करके सुखी बनना चाहता है। किन्तु वह इससे कभी–भी सुखी नहीं हो सकता है। मनुष्य को अपनी भौतिक इन्द्रियों को तुष्ट करने के

बजाय उसे भगवान को तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। यही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है।

1.5 गीता का प्रयोजन

शास्त्र के रूप में गीता का प्रयोजन सत्य और केवल सत्य का ही प्रतिपादन करना है। श्रीमद्भगवद्गीता एक अद्भुत वार्तालाप है परमात्मा और मनुष्यात्मा के बीच में जब जीवात्मा खुले दिल से भगवान को स्वयं अपनी समस्या बताता है तो समस्याओं से बाहर निकलने का स्वयं भगवान् मार्गदर्शन देते है जिसे ही ज्ञान कहा जाता है। यही ज्ञान श्रीमद्भगवद्गीता में है। जैसे कि पहले अध्याय में अर्जुन कहते है कि 'न युयुत्सवे गोविन्दम्' अर्थात् मैं युद्ध नहीं करूँगा और अष्टादश अध्याय में अर्जुन खड़े होकर कहते है कि

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।73।।

अर्थात् आपके इन महाकाव्यों को सुनकर मेरा मोह नष्ट हो गया है और मन में जितने भी सन्देह थे, उन सभी का निवारण हो गया। मैं जिन्दगी भर आपकी बातें सुनता रहूंगा।

इस प्रकार भगवद्गीता का प्रयोजन मनुष्य को भौतिक संसार के दुःखों से उबारना है। प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रकार की कठिनाइयों में फंसा रहता है। जिस प्रकार अर्जुन कुरूक्षेत्र में युद्ध करने के लिए कठिनाई में यह फैसला नहीं कर पा रहा था कि युद्ध करूँ या नहीं, तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की, उसके फलस्वरूप इस भगवद्गीता का प्रवचन हुआ। आज के युग में मनुष्य अपने आन्तरिक युद्ध में फंसा रहता है। वह सही निर्णय नहीं कर पाता है। यदि भक्ति भाव से श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन किया जाए तो मनुष्य इन आन्तरिक युद्धों से मुक्त होकर स्थायी शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

आज के युग में यदि कोई भी भगवान को खुद दोस्त बनाकर अपनी समस्याएं बताएगें तो सारी समस्याओं को समाधान मिल जाएगा। क्योंकि भगवद्गीता का मर्म भगवद्गीता में ही समाया हुआ है। उदाहरण के लिए यदि हमें किसी विशेष औषधि का सेवन करना है तो उस औषधि पर दिये हुए निर्देशों का ही पालन करेंगे। हम अपनी मर्जी से या अपने मित्र की सलाह से औषधि नहीं ले सकते है। इसी प्रकार भगवद्गीता को इसके वक्ता द्वारा दिए गये निर्देशों के अनुसार इसकी शिक्षाओं को स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का भगवान् से सीधा सम्बन्ध होता है और यह सम्बन्ध भक्ति की पूर्णता से ही जागृत होता है। किन्तु जीवन की वर्तमान अवस्था में मानव ने न केवल भगवान् को ही नहीं भुलाया बल्कि हमने भगवान् के साथ अपने शाश्वत सम्बन्धों को भी भुला दिया है। प्रत्येक जीव का भगवान् के साथ नित्य विशिष्ट सम्बन्ध होता है, यह स्वरूप कहलाता है। भक्तियोग की प्रक्रिया के द्वारा यह स्वरूप जागृत किया जा सकता है। तब यह अवस्था स्वरूप सिद्धि कहलाती है। अर्जुन भक्त था और अर्जुन का कृष्ण से सम्बन्ध सखा रूप में था। यह दिव्य मित्रता हर किसी को प्राप्त नहीं हो सकती थी।

आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति इस भौतिक अस्तित्व के कारण चिन्ताओं में फँसा हुआ है। मनुष्य अस्तित्व ही अनस्तित्व के परिवेश में है। वस्तुतः अनस्तित्व से भयभीत नहीं होना चाहिए। क्योंकि मानव का अस्तित्व सनातन है।

कष्ट भोगने वाले अनेक मनुष्यों में से कुछ ही मनुष्य ऐसे है जो वास्तव में यह जानना चाहता है कि वे क्या है ? हमें कष्ट क्यों दिया गया है ? आदि–आदि। जब तक मनुष्य को अपने विषय में जिज्ञासा नहीं होती, तब तक उसे अनुभव ही नहीं होता कि वह कष्ट भोगना नहीं अपितु सारे कष्टों का हल ढूँढना चाहता हैं, तब तक उसे सिद्ध मानव नहीं समझना चाहिए। जब मन में इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है तभी से मानवता शुरू होती है। इसलिए जब तक लोग यह प्रश्न करना आरम्भ नहीं कर देते कि वे क्यों कष्ट उठा रहे है ? वे कहाँ से आएँ है ? तथा मृत्यु के बाद कहाँ जाऐगें ? ऐसे प्रश्न करने वाले ही भगवद्गीता को समझ सकते है। निष्ठावान् विद्यार्थी में भगवान् के प्रति आदर भाव भी होना चाहिए। अर्जुन ऐसा ही विद्यार्थी था।

जब मनुष्य जीवन के वास्तविक प्रयोजन को भूल जाता है तो भगवान् श्रीकृष्ण विशेष रूप से उसी उद्देश्य की पुनर्स्थापना के लिए अवतार लेते है। तब भी असंख्य लोगों में से कोई एक ही होता है जो वास्तव में अपनी स्थिति को जान पाता है। वस्तुतः सभी मनुष्य अविद्या से ग्रस्त है लेकिन भगवान् ने जीवों पर विशेष रूप से मनुष्यों पर कृपा की है। इसलिए उन्होंने अपने मित्र अर्जुन को अपना शिष्य बनाकर भगवद्गीता का प्रवचन किया है।

भगवान कृष्ण का मित्र होने के कारण अर्जुन समस्त अज्ञान से मुक्त था। लेकिन कुरूक्षेत्र के युद्धस्थल में उसे अज्ञान में डाल दिया गया ताकि एक भगवान् कृष्ण से जीवन की समस्याओं के विषय में प्रश्न कर सके ताकि भगवान् उसकी व्याख्या भावी पीढ़ियों में मनुष्यों के लाभ के लिए कर दें और जीवन के लक्ष्य का निर्धारण कर सकें। तभी मनुष्य उसके अनुसार कार्य कर पायेगा और मानव जीवन के उद्देश्य को पूर्ण कर सकेगा।

1.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप महाभारत के सामान्य परिचय से अवगत हो गए होंगे जो विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य है। महाभारत एक लाख श्लोक में वर्णित है तथा इसमें 18 पर्व हैं। आपने जाना कि महाभारत कुरूवंश में जन्में धृतराष्ट्र और पाण्डु व इनके पुत्रों का आपसी संघर्ष की कहानी है। महाभारत के ही शांति पर्व में युद्ध के समय श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश मोहग्रस्त अर्जुन को दिया था। इसके पश्चात् आप गीता के अभिप्राय से परिचित हुए होंगे कि यह ग्रन्थ विश्व कल्याणकारी है इसमें जीवन के सभी तत्त्वों का समावेश है। आपने जाना कि कैसे भगवद्गीता के अध्ययन से जीवन की सारी समस्याओं का स्थायी हल प्राप्त हो जाता है। इसके पश्चात् आपने गीता का सामान्य परिचय प्राप्त किया। आपने जाना कि इसमें 18 अध्याय व 700 श्लोक है। जिसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के माध्यम से भगवान् ने अर्जुन के द्वारा हम सभी को उपदेश दिया है और बताया है कि मनुष्य कर्म करते हुए भी मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। इस इकाई के माध्यम से आपने गीता का प्रयोजन भी जाना। मनुष्यों को भौतिक सांसारिक दुःखों से मुक्त करना ही इसका वास्तविक प्रयोजन है। आपने जाना कि कैसे मनुष्य भौतिक अस्तित्व के कारण चिन्ताओं में फँसा हुआ है और अज्ञान के कारण अपने वास्तविक प्रयोजन 'मुक्ति को

प्राप्त करना' भूल जाते है। भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्धभूमि में अर्जुन के माध्यम से भगवद्गीता का ज्ञान दिया जिसके अनुसार यदि मनुष्य कर्म करे तो समस्त समस्याओं से मुक्त होकर आनन्दपूर्ण जीवन को व्यतीत कर सकता है। इस प्रकार से आप गीता के स्वरूप, अभिप्राय और प्रयोजन को समझ गए होंगे।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिह्न लगाइये।

i) जीवन कैसा है ? (नित्य/अनित्य)

ii) सर्वप्रथम योगपद्धति किसे सुनाई गई। (सूर्यदेव/मनु)

iii) अध्यात्मवाद की कितनी श्रेणियाँ है। (चार/तीन)

iv) भक्तियोग क्या है। (स्मरण/अभ्यास)

v) भगवद्गीता ज्ञान का द्वार किस के लिए खुला है (सभी श्रेणी के लोगों के लिए/विशेष लोगों के लिए)

2. अध्यात्मवाद की कौन–कौन सी श्रेणी है?

.....

.....

.....

.....

3. महाभारत में कितने पर्व है ?

.....

.....

.....

.....

4. गीता में कितने अध्याय व श्लोक हैं ?

.....

.....

.....

.....

5. गीता किसने, किसको तथा कहाँ पर सुनाई ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

क) भगवद्गीता का क्या अभिप्राय है ?

ख) गीता का वास्तविक प्रयोजन क्या है ?

1.7 शब्दावली

युयुत्सव – युद्ध करना

नष्टोमोहः – दूर हुआ मोह

स्मृतिर्लब्धाः – स्मरण शक्ति पुनः प्राप्त हुई

गतसन्देहः – दूर हुए है सारे संशय

स्थितोऽस्मि – स्थित हूँ

करिष्येः – पूरा करूँगा

1.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

i) अनित्य

ii) सूर्यदेव

iii) तीन

iv) अभ्यास

v) सभी श्रेणी के लोगों के लिए

2. ज्ञानी, योगी तथा भक्त

3. महाभारत में 18 पर्व हैं।

4. गीता में 18 अध्याय व 700 श्लोक हैं।

5. गीता श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरूक्षेत्र के मैदान में सुनाई।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप – भक्तिवेदान्तबुक ट्रस्ट, 1990

2. श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यसहित – गीता प्रेस, गोरखपुर

3. श्रीमद्भगवद्गीता – साधकसंजीवनी हिन्दी टीका – गीताप्रेस, गोरखपुर

इकाई 2 गीता में प्रतिपादित विषय

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 गीता में प्रतिपादित विषय

- 2.2.1 निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग
- 2.2.2 ज्ञानयोग
- 2.2.3 भक्तियोग
- 2.2.4 आत्मतत्व
- 2.2.5 स्थितप्रज्ञ
- 2.2.6 ब्रह्म या परमेश्वर
- 2.2.7 जीव
- 2.2.8 मोक्ष

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- आप ब्रह्म या परमेश्वर के स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- जीव के विषय में समझ सकेंगे।
- आत्मा के स्वरूप के बारे में समझ सकेंगे।
- कर्मों की गति के बारे में जान सकेंगे।
- स्थितप्रज्ञ के बारे में समझ पायेंगे।
- ज्ञानयोग को समझेंगे।
- ज्ञान और भक्ति के अन्तर को समझ सकेंगे।
- मोक्ष की अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने भगवद्गीता के सामान्य स्वरूप को समझा। आप यह जानते है कि श्रीमद्भगवद्गीता हमारा धार्मिक ग्रन्थ है जो कि अट्ठारह अध्याय में बंटा हुआ है। इसके अट्ठारह अध्याय की विषय–वस्तु को कुछ प्रमुख विषय में बांट सकते हैं। ये विषय हैं –

(1)	ज्ञानयोग	(2)	भक्तियोग
(3)	निष्काम कर्मयोग	(4)	आत्मतत्व
(5)	स्थितप्रज्ञ	(6)	ब्रह्म या परमेश्वर
(7)	जीव	(8)	मोक्ष

अपने वास्तविक स्वरूप को जानना ही आत्मा को जानना हैं। अपनी इन्द्रियों को वश में करके परमात्मा में स्थित होना ही स्थितप्रज्ञ हैं। वह ईश्वर सर्वोच्च नियंता हैं और जीव नियन्त्रण में हैं। अन्त में मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन हैं। इन सभी विषयों का अध्ययन आगे किया जाऐगा और इनका ज्ञान प्राप्त किया जाएगा।

श्रीमद्भगवद्गीता को वास्तविक अर्थों में योगशास्त्र की संज्ञा दी गई हैं। क्योंकि इसके प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' ऐसा कहा गया हैं। इसलिए गीता में योग संबंधी विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। योग शब्द वस्तुतः संबंध वाचक है। आत्मा के साथ परमात्मा का जो संबंध बताए वह योग है। महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया हैं – ''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'' (1/12) और उस योग का परिणाम बतलाया है, दृष्टा के स्वरूप में स्थित हो जाना। ''तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्'' (113) इस प्रकार से पातंजलयोग दर्शन में 'योग' का जो परिणाम बतलाया गया हैं उसी को गीता में 'योग' के नाम से बताया गया हैं। आत्मा का परमात्मा के साथ नित्य संबंध स्थापित करने के लिए तीन योग मार्ग बताए हैं। जिन्हें – (1) कर्मयोग, (2) ज्ञानयोग, (3) भक्तियोग से जाना जाता हैं। यद्यपि योग की प्राप्ति के लिए मुख्य रूप से भगवान ने दो निष्ठा बताई हैं – (1) कर्मयोग, (2) सांख्य योग। जैसा कि गीता में कहा गया हैं – असत् से संबंध विच्छेद करना ही कर्मयोग हैं और सत् के साथ योग होना ही सांख्य योग हैं। जो भक्त स्वयं को भगवान् के लिए समर्पित कर देता हैं वह भक्तियोग कहलाता है। हर मनुष्य को अपना उद्धार करने के लिए परमेश्वर से तीन शक्तियाँ प्राप्त हैं –

1) कर्म करने की शक्ति (कर्मयोग)
2) जानने की शक्ति (ज्ञानयोग)
3) मानने की शक्ति (भक्ति)

कर्म करने की शक्ति से तात्पर्य निःस्वार्थ भाव से संसार की सेवा करने की शक्ति है जोकि कर्मयोग है। अपने वास्तविक स्वरूप को जानना ही ज्ञानयोग है। मानने की शक्ति का अर्थ है अपने को भगवान् के लिए समर्पित करना यही भक्तियोग है। ये तीनों मार्ग ही परमात्मा प्राप्ति का मार्ग है और अन्य साधन इन तीनों के अन्तर्गत ही आ जाते है। इन तीनों का अलग–अलग वर्णन अन्य शास्त्रों में भी है लेकिन तीनों का एक साथ समन्वय गीता में ही मिलता है। इन तीनों योगों से कर्मों का नाश सम्भव है–

कर्मज्ञानभक्तियोगाः सर्वेऽपि कर्मनाशकाः।
तस्मात् केनापि युक्तः स्यान्निष्कर्मा मनुजो भवेत।। गीतादर्शन

2.2.1 निष्काम कर्मयोग

कर्मयोग वह योग है जिसमें कर्म की प्रधानता होती है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भी अपने ग्रन्थ 'गीता रहस्य' में गीता का मुख्य विषय कर्मयोग को बताया हैं। सकाम और निष्काम के भेद से दो प्रकार के कर्म होते है। इनमें सकाम कर्म ही बन्धन

का कारण है जबकि निष्काम कर्म मोक्ष का कारण है। गीता का मुख्य प्रतिपादित विषय निष्काम कर्म है। यह वह कर्म है जिसमें इच्छाओं, कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है। जब कुरूक्षेत्र में अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन को मोह हो जाता है और वह युद्ध न करने का निश्चय करता है। ऐसे समय में श्रीकृष्ण द्वारा गीता का उपदेश दिया गया है। श्रीकृष्ण कहते है कि –

सुखेदुखे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापम वाप्स्यसि।। (गीता 2/38)

अर्थात् अर्जुन को वह जय–पराजय, लाभ–हानि आदि से ऊपर उठकर अपने क्षत्रिय धर्म के पालन का उपदेश देते है। आसक्ति के कारण अर्जुन के मन में युद्ध के लिए वैराग्य उत्पन्न हुआ, परन्तु यह वैराग्य स्वाभाविक न होकर बन्धन का कारण बन रहा था। इसलिए श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है। गीता के द्वितीय अध्याय के 47वें श्लोक में निष्काम कर्म की व्याख्या करते हुए भगवान् ने अर्जुन से कहा है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् तेरा कर्म करने में अधिकार है, उसके फल में तेरा अधिकार कभी नहीं है। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत बन तथा कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति न हो। यही निष्काम कर्म के बन्धन में एक स्वाभाविक शंका उत्पन्न होती है कि कोई भी मूर्ख व्यक्ति किसी प्रयोजन के बिना कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि यदि कोई कामना ही नहीं होगी तो वह कर्म क्यों करें। अतः निष्काम कर्म भी असंभव है। इस समस्या का समाधान करते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है –

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। (3/27)

अर्थात् जीवात्मा अहंकार के प्रभाव से मोहग्रस्त होकर अपने आपको समस्त कर्मों का कर्ता मान बैठता है जबकि वास्तव में वे प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा किये जाते है। अतः जो ज्ञानी व्यक्ति है वह यह जानता है कि सभी कर्म प्रकृति जनित गुणों द्वारा ही किये जाते है। इस प्रकार गीता में निष्काम कर्म का उद्देश्य दो रूपों में बताया है। (1) आत्मशुद्धि (2) ईश्वर के प्रयोजन को पूरा करना। पहला कर्म केवल योगी करता है और दूसरा कर्म जिसका फल ईश्वर को अर्पित किया जाता है। दूसरे में वह लोक की सेवा ईश्वर के लिए करता है। गीता में निष्काम का अर्थ लक्ष्यविहिनता न होकर कर्म फल के प्रति आसक्ति से विरत होने में है। गीता अपने सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थों में लक्ष्य विहीन न होकर के निष्काम कर्मयोग का अनुपालन करती है।

निष्काम कर्मयोगी के विषय में भगवद्गीता में कहा गया है कि जो कर्मयोगी अपने स्वधर्म का पालन निष्काम भाव से करता है वह मनुष्य सांसारिक भवबन्धन से मुक्त हो जाता है। व्यक्ति की श्रेष्ठता फल प्राप्ति में नहीं है बल्कि फल के त्याग करने में है। कर्म करने की कुशलता ही योग है –**''योगः कर्मसु कौशलम्''**। निष्काम कर्म अकर्मण्यता की शिक्षा नहीं देता बल्कि कर्मफल के त्याग की शिक्षा देता है।

2.2.2 ज्ञान योग

ज्ञानयोग को गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय स्वीकार करने वाले सर्वप्रमुख विद्वान आचार्य शंकर है। इनके अनुसार संसार को असार मानना तथा आत्मा को परमात्मा के रूप में समझना ही 'ज्ञानयोग' है। आत्मज्ञानी के लिए यह सम्पूर्ण जगत् मृगतृष्णा के समान है। रज्जू में सर्प की प्रतीति के समान मिथ्या है। आचार्य शंकर का प्रमुख सिद्धान्त है –

''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः।''

अर्थात् केवल ब्रह्म ही सत्य है और यह जगत् मिथ्या है। जीव तथा ब्रह्म एक ही है। सब कुछ ब्रह्म ही है। यह ब्रह्म एक, अद्वैत तथा शुद्ध स्वरूप है। ब्रह्म ही आत्मा है, आत्मा ही ब्रह्म है। यह एकत्व की प्रतीती ही 'ज्ञानयोग' है। गीता में कहा गया है –

''सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।'' 6/29

अर्थात् समाधियोग में स्थित पुरुष सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करके अविद्या से उत्पन्न शरीरादि की सीमा से रहित उस आत्मा को सब प्राणियों में अवस्थित और सब प्राणियों को अभिन्न रूप में आत्मा में ही स्थित देखते है। इसी विषय को ओर स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि –

'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।' 6/30

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक रूप से देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ। ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर अज्ञान रूपी अंधकार समाप्त हो जाता है वैसी ही स्थिति ज्ञानयोगी की होती है। ज्ञानयोगी मनुष्य प्राणियों को समान भाव से देखता है –

''विद्या – विनय – सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः।। 5/18

अर्थात् ज्ञानी मनुष्य विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समानदर्शी होते है। अभिप्राय यह है कि ज्ञानयोगी का विषय भाव बिल्कुल नष्ट हो जाता है। उसकी दृष्टि में सच्चिदानन्द परमात्मा की सत्ता है तथा परमात्मा में ही जब वह सम्पूर्ण प्राणियों का विस्तार देखता है तभी उसी क्षण वह सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

''यदा भूत पृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत् एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।'' 13/3

अर्थात् जब विवेकवान् व्यक्ति विभिन्न भौतिक शरीरों के कारण विभिन्न स्वरूपों को देखना बन्द कर देता है और यह देखता है कि किस प्रकार से जीव सर्वत्र फैले हुए है तो वह ब्रह्म बोध को प्राप्त होते है।

क्योंकि जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को जलाकर राख कर देती है वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है। यथा –

'यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा।। 4/37

इसीलिए गीता में जोर देकर ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है और बताया गया है कि इस संसार में ज्ञान के समान निःसंदेह पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है–

'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' इसी बात को उपनिषदों में भी कहा गया है कि **''ज्ञानात् ऋते न मुक्तिः''** अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति सम्भव नहीं है। गीता के दसवें अध्याय के दसवें श्लोक में कहा गया है कि जो भक्त मेरी चिन्ता करते हुए सदा श्रद्धा से मेरी आराधना करते है उन्हें मैं अपने सम्बन्ध का सम्यक् ज्ञान प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त कर सकें। आगे चतुर्थ अध्याय के 33वें श्लोक में कहते हैं कि – ''ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते'' जो पुरुष जितेन्द्रिय, श्रद्धावान तथा साधन परायण होते हैं, वह ज्ञान को शीघ्रता से प्राप्त कर लेते है और ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवद् प्राप्ति रूप पर आनन्द को प्राप्त हो जाता है –

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परा शांतिमचिरेणाधिगच्छति।। 4/39

गीता में भक्तों में ज्ञानी भक्त को भगवान् से श्रेष्ठ कहा गया है। गीता में ज्ञानयोगी को 'स्थितप्रज्ञ' भी कहा गया है। क्योंकि स्थितप्रज्ञ मनुष्य केवल एक मात्र परमात्मा को ही सत्य स्वीकार करता है और ब्रह्म के अतिरिक्त जो भी इस जगत् के पदार्थ है, उनको मिथ्या समझता है। गीता में ज्ञानयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें संसार का त्याग न करके संसार के प्रति आसक्ति का त्याग करने की बात कहते हैं।

2.2.3 भक्तियोग

गीता का एक मुख्य विषय भक्तियोग है। अपने उपास्य देव की श्रद्धापूर्वक सेवा करना ही भक्ति है। जो मनुष्य संसार से विमुख होकर केवल भगवान् की शरण में शरणागत हो जाता है, उसे परमेश्वर सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर देते है, क्योंकि भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (18/66)

अर्थात् हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर मेरी शरण में आ जा। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा तू चिन्ता मत कर।

श्री रामानुज आचार्य ने भक्ति को सर्वश्रेष्ठ साधन माना है और उन्होंने गीता में भक्तियोग का प्रतिपादन किया है। भक्तियोग का तात्पर्य ध्यान, भजन, कीर्तन, मनन और उपासना आदि से है। भगवान् के अतिरिक्त किसी भी अन्य का भाव मन में न लाना ही अनन्त भाव कहलाता है और यही अनन्यभाव ही भक्ति योग है –

अनन्याश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। गीता 9/22

अर्थात् जो लोग अनन्यभाव से मेरे दिव्य स्वरूप का ध्यान रखते हुए निरन्तर मेरी पूजा करते है, उनकी जो आवश्यकताएँ होती है, उन्हें मैं पूरा करता हूँ और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूँ।

आनन्द भक्ति को ही गीता में अनन्यचित भी कहते हैं। इस अनन्यचित्त वाले व्यक्ति को ईश्वर की प्राप्ति दुर्लभ नहीं होती है। जैसा कि भगवान् कहते हैं –

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। (8/14)

अर्थात् जो व्यक्ति मुझसे अनन्यचित्त होकर हमेशा मुझ पुरुषोत्तम का निरन्तर स्मरण करता है। उस योगी के लिए मैं सहजता से प्राप्त हो जाता हूँ। आगे अट्ठारहवें अध्याय के 5वें श्लोक में भगवान् कहते हैं कि –

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। 18/65

अर्थात् तुम मुझमें अपना हृदय अर्पण कर दो, मेरे भक्त हो जाओ, मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो, मैं तुमसे प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि इस मेरे प्रसाद से प्राप्त ज्ञान के द्वारा तुम मुझे ही पाओगे, क्योंकि तुम मेरे अतिप्रिय हो। इस प्रकार भक्ति द्वारा ही भक्त सभी सांसारिक बन्धनों को तोड़कर भगवान् को प्राप्त कर लेता हैं। इस प्रकार ईश्वर को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति है। ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से अनन्य अनुराग को भक्ति कहते है।

भगवान् ने कहा है कि मेरे भक्त का कभी भी नाश नहीं होता है –

"न मे भक्तः प्रणश्यति।" (9/31)

इस प्रकार से हम कह सकते है कि ज्ञान कर्म, भक्ति योग का समन्वय–समस्त शास्त्रों के मन्थन से अमृतमयी गीता का आविर्भाव हुआ है। इसलिए गीता को 'सर्वशास्त्रमयी' कहा गया है। इसमें सभी मतों, दृष्टियों, सिद्धान्तों और विचारों का जो युक्तियुक्त समन्वय दिखलाई पड़ता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों ही मोक्ष के साधन है। इनमें ये साधक किसी एक का आश्रय लेकर आसानी से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। जैसे गुरुदेव, वामदेव आदि ज्ञानियों ने ज्ञानयोग से ईश्वर रूपी साध्य को प्राप्त किया। जनक आदि महापुरुषों ने अपने निष्काम कर्म के द्वारा भगवान् को प्राप्त किया और प्रहलाद आदि भक्त ने भक्ति के द्वारा उस परमेश्वर को प्राप्त किया। अतः तीनों ही मार्ग सम्यक् तथा उचित है। इन तीनों मार्ग में से कोई भी मनुष्य किसी भी मार्ग को अपना सकता है। मार्ग भले ही अलग–अलग है, लेकिन तीनों का एक ही लक्ष्य है ईश्वर की प्राप्ति। किसी भी मार्ग का किसी के साथ कोई भी विरोध नहीं है। गीता में इन तीनों का समन्वय करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण 9वें अध्याय के 34वें श्लोक में कहते है कि –

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः।। (9/34)

अर्थात् मुझमें अपना मन लगाने वाला होओ, मेरा भक्त बनो (भक्तियोग) मेरी पूजा करो तथा मुझे प्रणामकर (कर्मयोग) इस प्रकार आत्मा का मुझमें निश्चय करके (ज्ञानयोग) मेरे परायण होकर ही तू मुझको प्राप्त करेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् के

नामरूप, गुण आदि का श्रवण, कीर्तन आदि भक्ति है, निष्काम भाव से यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना ही निष्काम कर्म है तथा ईश्वर के बारे में यह ज्ञान लेना कि ईश्वर ही कर्ता है, विधाता है, धर्ता है, एकमात्र सत्य है, सर्वव्यापी है, सर्वज्ञ है और परमपुरुषोत्तम है यही ज्ञानयोग है। इस प्रकार गीता में तीनों मार्गों का एक साथ प्रतिपादन देखने को मिलता है।

2.2.4 स्थित प्रज्ञ

जिसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि उस ईश्वर में स्थित है वह 'स्थितप्रज्ञ' है। श्री कृष्ण कहते है कि जब निष्काम कर्मयोगी की बुद्धि से मोह या अज्ञानता का नाश हो जाएगा तब सभी विषय उसे निरर्थक प्रतीत होंगे इसके बाद हे अर्जुन तुम्हारी बुद्धि समाधि में स्थित हो जाएगी। इस प्रकार जिसे भारतीय दर्शनों में 'जीवन्मुक्त' कहा है वही गीता में 'स्थित प्रज्ञ' है। गीता में समत्व योगी या समाधि में पहुँचे हुए साधक के लिए ही 'स्थित प्रज्ञ' प्रयुक्त हुआ है। स्थित प्रज्ञ संसार का नहीं अपितु संसार के प्रति आसक्ति का त्याग कर देता है और वह सब प्राणियों में ईश्वर को और ईश्वर में सभी प्राणियों को देखता हुआ सर्वेश्वरवादी होता है। कुछ मनुष्य 'स्थिर बुद्धि' और स्थित प्रज्ञ को भ्रम के कारण एक मान लेते है किन्तु दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति इन्द्रियों द्वारा विषयों का ग्रहण तो नहीं करता अपितु इन्द्रियों को उनके विषयों से विमुख कर लेता है। किन्तु उस विषयों से रागात्मक निवृत्ति नहीं मिलती है। जबकि स्थित प्रज्ञ व्यक्ति की आसक्ति परमात्मा का साक्षात्कार करके ही निवृत हो जाती है। कहा भी गया है –

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। 2/59

अर्थात् यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष भी केवल विषय से तो निवृत हो जाते हैं, परन्तु राग से निवृत नहीं होते। इस पुरुष का राग भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत हो जाता है।

इस प्रकार विषयों से इन्द्रियों को हटाना ही केवल स्थित प्रज्ञ का लक्षण नहीं हो सकता अपितु रागात्मक विकारों से मुक्त होकर शुद्ध बुद्धि रूप आत्मा में स्थित होना ही प्रज्ञा कहलाती है। ऐसी प्रज्ञा से युक्त अपने मन को वश में करके 'स्थित' प्रज्ञ हो जाता है।

स्थित प्रज्ञ की अवस्था ध्यान जन्य समाधि की अवस्था से बिल्कुल भिन्न है क्योंकि स्थित प्रज्ञ की अवस्था जागृत अवस्था की सहज समाधि की अवस्था है। जबकि ध्यान जन्य समाधि की अवस्था में एकाग्रता की स्थिति प्रयासपूर्वक प्राप्त होती है और इस अवस्था में मन की वृत्तियों में भी परिवर्तन होता रहता है। इसके विपरीत स्थित प्रज्ञ की अवस्था जागृत अवस्था होते हुए भी ईश्वर के समाधिस्थ होने के कारण स्थिर होती है। गीता के द्वितीय अध्याय में अर्जुन श्रीकृष्ण जी से स्थितप्रज्ञ का लक्षण पूछते हुए कहते हैं कि –

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।। 2/54

अर्थात् हे केशव! समाधि से युक्त स्थित प्रज्ञ की क्या परिभाषा है? स्थित बुद्धि होने पर वह कैसे बैठता है? कैसे बात करता है? किस तरह आचरण करता है? इस प्रकार अर्जुन द्वारा पूछे जाने पर श्री कृष्ण ने स्थित प्रज्ञ के निम्न लक्षण बताए है –

1 स्थित प्रज्ञ सभी प्रकार की सात्विक, तामसिक और राजसिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा आत्मा को बाह्य विषयों से हटाकर स्वरूपानन्द में ही संतुष्ट रहता है। उसे स्थित प्रज्ञ कहते है।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। 2/55

अर्थात् जो सभी प्रकार के विषय चिन्तन को छोड़कर सदा श्री भगवान् में अपने मन को लगाता है। स्थित प्रज्ञ भक्त को काम–क्रोध–लोभ–मोह आदि विकार ग्रस्त नहीं करते है, वे केवल नाममात्र के ही रह जाते हैं। जैसी जली हुई रस्सी में उसका आकार उसकी ऐठन तो दिखती है किन्तु थूक मात्र से ही वह उड़ जाती है। इसी प्रकार उस ईश्वर को प्राप्त कर लेने से उसमें ज्ञान–विचार नहीं रह जाते है।

2 सुख, दुःख, आसक्ति, भय, क्रोध आदि के पीछे वासना या कामना ही होती है। इस वासना से रहित होने से ही स्थित प्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त करोगे।

3 स्थित प्रज्ञ होने पर राग, द्वेष और क्रोध से मुक्त होता है।

4 वह व्यक्ति सभी विषयों से अनासक्त होकर ईश्वर में लीन होता है।

5 स्थित प्रज्ञ व्यक्ति का मुख्य लक्षण यह है –

यदा संहरते चायं कुर्मोऽंगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। (2/58)

अर्थात् जिस प्रकार कछुआ अपने विविध अंगों को अपने अन्दर समेट लेता है उसी प्रकार का यह जितेन्द्रिय योगी इन्द्रियों को उनके विषय से पूर्णतया अपने भीतर लौटा लेता है और शब्दादि विषय दूर हो जाते है किन्तु उनकी आसक्ति खत्म नहीं होती। फिर स्थित प्रज्ञ की आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करने से खत्म हो जाती है।

6 अन्तिम श्लोक जो स्थित प्रज्ञ से सम्बन्धित है– उसमें श्री कृष्ण कहते हैं कि– जो मेरे भक्त एकान्त या आत्मनिष्ठ योगी है उनको अपनी इन्द्रियों को संयमित (2/61) करके समाहित होकर अवस्थित रहना चाहिए क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में है उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है। स्थित प्रज्ञ व्यक्ति में सम्पूर्ण भोग विषय उसी प्रकार उत्पन्न नहीं होते जिस प्रकार चलायमान नदियाँ समुद्र में गिरकर भी समुद्र को चलायमान नहीं कर पाती। ऐसे स्थित प्रज्ञ पुरुष सभी कामनाओं को त्याग कर, ममता रहित, अहंकार रहित होता हुआ शान्ति को प्राप्त करता है। स्थित प्रज्ञ पुरुष की स्थिति ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त करके वह पुनः मोहित नहीं होता और अन्त काल में ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

2.2.5 गीता में आत्मतत्व

गीता के मुख्य विषय के रूप में एक विषय आत्मतत्व है। इसमें आत्मा के लिए नित्य, अविनाशी, अजर, अव्यय, सर्वगत, सनातन, अव्यक्त, अचल, अचिन्त्य और अविकारी

आदि पद प्रयुक्त हुए है। जिसकी सत्ता तीनों कालों में हो उसे नित्य कहा जाता है। आत्मा के अतिरिक्त कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल तीनों में रह सकें। अतः आत्मा की नित्यता सिद्ध होती है, अविनाशी का अर्थ है जिसका विनाश नहीं हो। शरीर विनाशी है और आत्मा अविनाशी है। शरीर तो नष्ट होकर पंच महाभूतों में विलीन हो जाता है। लेकिन आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती रहती है यथा –

वांसांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। (2/22)

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

आत्मा को सत् भी कहा गया है। सत् अर्थात् जिसकी तीनों कालों भूत, वर्तमान, भविष्य में सत्ता हो, क्योंकि जो सत् होता है उसी का भाव होता है अर्थात् प्रतीत होती है और जो असत् है उसका भाव या प्रतीति नहीं हो सकती और जो सत् है उसका अभाव नहीं हो सकता।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (2/16)

अर्थात् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि असत् वस्तु का तो अस्तित्व ही नहीं है सत् का अभाव नहीं है।

गीता में भगवान् ने आत्मा के स्वरूप के विषय में कहा है कि आत्मा सदैव एक रूप होती है। उसमें कभी भी विकार उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए आत्मा को अविकारी भी कहा जाता है। कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था शरीर की होती है। आत्मा की नहीं होती। जिस प्रकार जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में जीव नित्य एक सत्य रहता है उसी प्रकार आत्मा की सत्यता एवं नित्यता होती हैं अर्थात् उत्पत्ति एवं विनाश देह का होता है, आत्मा का नहीं होता।

देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं यौवन जरा।
यथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। (2/13)

अर्थात् जैसे जीवात्मा की इस देह में कुमार, युवा और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषय में धीर मनुष्य मोहित नहीं होता। अर्थात् जैसे कुमार, युवा और जरावस्थारूप स्थूल शरीर का विकार अज्ञान से आत्मा में आभासित होता है। वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त सूक्ष्म शरीर का विकार भी अज्ञान से ही आत्मा में आभासित होता है इसलिए इस तत्व को जानने वाला धीर मनुष्य इस विषय में मोहित नहीं होता है। भगवान् आत्मा के स्वरूप को समझाते हुए कहते हैं कि –

अविनाशी तु तद्विद्धि/तद्वद्धि येन सर्वमिंद ततम्
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। (2/17)

अर्थात् जो सारे शरीर में व्याप्त है उसे ही तुम अविनाशी समझो। इस अव्यय आत्मा को स्पष्ट करते है कि यह आत्मा अविनाशी, अप्रमेय तथा शाश्वत है तथा अत्यन्त सूक्ष्म रूप है। इस आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी दिखाई पड़ता है किसी की भी अलग सत्ता नहीं है। ब्रह्म या आत्मा ही एकमात्र सत् है।

गीता के अनुसार यह आत्मा अविनाशी एवं अतुलनीय है। जो इस जीवात्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसे मरा हुआ समझता है, वे दोनों ही अज्ञानी है। क्योंकि आत्मा न तो मरता है और न ही मारा जाता है। इसलिए श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है कि हे अर्जुन! इस शरीर का अन्त मानकर कि ये शरीर अवश्य ही खत्म होना है। इसलिए तुम युद्ध करो। आगे आत्मा की अमरता के बारे में बताते हुए कहते है कि आत्मा के लिए किसी भी काल में न तो जन्म है और न मृत्यु। वह न तो कभी जन्मा है, न जन्म लेता है और न ही जन्म लेगा। वह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी वह मारा नहीं जाता। इस प्रकार इस अग्रिम श्लोक में भगवान् आत्मा का ही प्रकारान्तर से वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। (2/23)

अर्थात् इस आत्मा को कभी किसी शस्त्र द्वारा काटा नहीं जा सकता, न ही इसे अग्नि जला सकती है, न ही जल द्वारा भिगोया जा सकता है। न यह वायु द्वारा सुखाया जा सकता है। इस प्रकार यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, निश्चित और सनातन है –**"नित्यः सर्वगतः स्थानुरचलोऽयं सनातनः।"** यह आत्मा न तो वाणी से व्यक्त किया जा सकता है और न ही मन से इसको जाना जा सकता है। अतः इसे इस प्रकार का जानकर हे अर्जुन! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। फिर आगे श्री कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! यदि तुम यह भी मान लो कि यह आत्मा सदा उत्पन्न और मरणशील है तो भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है और मृत व्यक्ति का जन्म निश्चित है। इस कारण ऐसे अवश्यम्भावी विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। (2/27)

भगवान् आत्मा के विषय में 'अर्जुन को साधारण तरीके से समझाते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! सभी प्राणी जन्म से पूर्व अव्यक्त थे, बीच में कुछ समय के लिए दिखाई देते है और मृत्यु के बाद फिर अव्यक्त हो जाएंगे। उनके लिए शोक करना अनुचित है, जिन सगे सम्बन्धियों के लिए तुम चिन्ता कर रहे हो, वे सभी जन्म के पूर्व तुम्हारे कौन थे? और मृत्यु के बाद इन सभी से तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा। तुम्हारा इनके साथ कुछ समय के लिए ही सम्बन्ध होता है। मानों रात भर के लिए किसी धर्मशाला के यात्रियों के बीच मिलन की तरह है। प्रातःकाल होते ही सब लोग उस धर्मशाला को छोड़कर अपने–अपने गन्तव्य स्थान पर चले जाते हैं। अतः इस संसार में भी ये मेरी माता है, पिता है, पत्नी है, पति है, बच्चे है ऐसे सम्बन्ध मानकर मोहग्रस्त होकर शोक करना उचित नहीं है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। (2/28)

भगवान् आगे कहते है कि हे अर्जुन! यह आत्मा सबके शरीर में अवध्य है, इसलिए तुम्हें किसी भी प्राणी के निधन से तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। इसलिए हे अर्जुन! अपने क्षत्रिय धर्म को देखकर अपने स्वधर्म से विचलित होना शोभा नहीं देता क्योंकि धर्मयुद्ध के अतिरिक्त क्षत्रियों के लिए कुछ भी कल्याणकारी नहीं है। इसलिए तू अपने धर्म का पालन करते हुए तुम्हें युद्ध करना चाहिए! यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो

तुम्हारी अपकीर्ति पूरे विश्व में फैल जाएगी जोकि मृत्यु से भी दुखदायी है और यदि युद्ध में तुम मारे जाओगे तो तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी। यदि तुम युद्ध जीत गए तो पृथ्वी का राज्य भोगोगे। इसलिए हे अर्जुन! युद्ध के लिए निश्चय करके तुम युद्ध के लिए खड़े हो जाओ। सुख–दुःख, लाभ–हानि, 'जय–पराजय को समान समझकर तुम युद्ध करो तो तुम्हें पाप स्पर्श नहीं करेगा। इस प्रकार भगवान् ने आत्मा की अमरता से सम्बन्धित मुख्य उपदेश दिए है। इस प्रकार आत्मतत्व बड़ा ही गहन है।

2.2.6 ब्रह्म या परमेश्वर

गीता में ब्रह्म या परमेश्वर का महत्वपूर्ण एवं विशद् विवेचन किया गया है। गीता में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है। ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का अभिन्न निमित्त और उपादान कारण है। वह शुद्ध चैतन्य और अखण्ड आनन्द स्वरूप है। वह निर्विकल्पक, निरूपाधि और विश्वातीत है। ब्रह्म अन्तर्यामी के रूप में सारी प्रकृति और समस्त प्राणियों में वास करता है। ब्रह्म या वह ईश्वर विश्वात्मा होते हुए भी वह विश्व में सीमित नहीं है, वह विश्वातीत भी है। वह ब्रह्म निर्विकार, निराकार, निर्गुण और निर्विशेष है। भगवान् श्री कृष्ण गीता में वर्णन करते हुए कहते है कि हे अर्जुन! इस पूरी सृष्टि में मुझसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। मैं जल में रस, चन्द्र, सूर्य में ज्योति, समस्त वेदों में ओंकार स्वरूप, आकाश में शब्द और मनुष्यों में पुरुषाकार हूँ। जीवन में जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है, वही ब्रह्म रूप से इस समस्त बाह्य जगत् में भी व्याप्त है। वह ब्रह्म शुद्ध चैतन्य तथा स्वयं प्रकाशमान है। गीता में श्री कृष्ण ने क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तम इन तीन प्रकार के पुरुषों का उल्लेख किया है, जबकि सांख्य दर्शन पुरुष को एक मानता है। वेदान्त के एकात्मवाद के समान गीता में भी एकात्मवाद समर्थित हुआ है। जैसे –

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। (7/7)

अर्थात् हे धनञ्जय। मुझे श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है। जिस प्रकार मोती धागे में गुँथे रहते है उसी प्रकार सब कुछ मुझ पर ही आश्रित है, ब्रह्म ही समस्त भूतों और प्राणियों की स्थिति है। ब्रह्म में ही सब कुछ लय प्राप्त हो जाता है। गीता के सातवें अध्याय के छठें श्लोक में भगवान कहते है कि –

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। (7/6)

अर्थात् सारे प्राणियों का उद्गम इन दोनों चेतन और अचेतन शक्तियों में है। इस जगत् में जो कुछ भी भौतिक तथा आध्यात्मिक है। उसकी उत्पत्ति तथा प्रलय मुझे ही जानो।

योग दर्शन कहता है कि –**''क्लेश कर्म विपाकाशैयरपरामृष्टः, पुरुषविशेषः परः''** अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय ये चारों जीव मात्र में सतत वर्तमान रहते है। इनके द्वारा ही पुरुष भोक्तृत्व रूप को प्राप्त होता हैं। ये चारों जिसमें नहीं होते है वहीं ईश्वर है। जीव के साथ ईश्वर का यही भेद होता है कि जीवों के कर्मसंस्कार होते है। ईश्वर का कोई कर्म नहीं होता है। ईश्वर स्वभावतः चिरमुक्त है। ईश्वर को पुरुषविशेष भी कहा गया है। गीता में तीन प्रकार के पुरुष बताए गए है – 1. क्षर पुरुष, 2. अक्षर

पुरुष और 3. पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तम ही ईश्वर है वह अन्य दो पुरुषों से विशेष या विलक्षण है –

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। (15/17)

अर्थात् इन दोनों क्षर और अक्षर के अतिरिक्त एक परम पुरुष परमात्मा है, जो साक्षात् अविनाशी भगवान् है और जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उनका पालन कर रहा है। आगे भगवान् कहते हैं कि क्योंकि मैं क्षर से परे और अक्षर से भी अतीत तथा श्रेष्ठतम हूँ। इसी कारण लोक व्यवहार या पुराण आदि में और वेदों में मैं पुरुषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। (15/18)

गीता परमेश्वर की दो प्रकृतियों का वर्णन करती है – (1) अपरा, (2) परा। 'अपरा' प्रकृति को 'क्षेत्र' तथा 'क्षर' 'पुरुष' भी कहा जाता है। इसे जड़ प्रकृति भी कहते है, क्योंकि इसके अन्दर भौतिक पदार्थ विद्यमान है। 'पराप्रकृति' के अन्दर चेतन जीव आते है इसका अन्य नाम क्षेत्रयज्ञ और 'अक्षर' पुरुष भी है।

द्वाद्विमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। (15/16)

भौतिक जगत् में प्रत्येक जीवच्युत (क्षर) होता है तथा आध्यात्मिक जगत् प्रत्येक जीव अच्युत (अक्षर) कहलाता है। इस प्रकार यह पुरुषोत्तम ही परमतत्व है जो प्रकृति तथा चेतन जीव दोनों से ऊपर की कोटी के लिए है। वह अन्तर्यामी रूप में रहकर दोनों का नियमन करता है। फिर भी विश्वातीत पुरुषोत्तम कहा गया है। इस प्रकार गीता में सगुण ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म का अत्यधिक सुन्दर होकर ईश्वर हो जाता है। ईश्वर की समस्त विश्व के कर्ता–धर्ता, नियन्ता और आराध्य है और परब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निर्विकल्पक, निरूपाधिक, निरप्रश्न, अनिवर्चनीय और अपरोक्ष अनुभूतिगम्य है। निर्गुण ब्रह्म का केवल निषेध मुख 'नेति–नेति' से ही वर्णन संभव है। गीता दर्शन के अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही कभी–कभी अपने आपको माया शक्ति के द्वारा सीमित करके अवतार ग्रहण करता है। यही ईश्वर का सगुण स्वरूप होता है इस सम्बन्ध में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण को कहा है कि –

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (4/7)

गीता में ईश्वर प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बताए गए है, जो ज्ञान, भक्ति और कर्म के नाम से जाने जाते है। गीता में वर्णित विश्वरूप दर्शन का एक मात्र लक्ष्य ईश्वर का साक्षात्कार है। गीता में ईश्वर, जीव, माया, प्रकृति विश्व उत्पत्ति, विनाश, आत्मा तथा जरण–मरण आदि समस्त लौकिक तथा परलौकिक दृष्टि से वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से सम्यक् विवेचन किया गया है। यही कारण है कि भगवद्गीता आज समस्त विश्व की प्रदर्शिका के रूप में प्रतिदिन आगे बढ़ रही है। गीता का अमर संदेश आज के अशान्त जगत् में विक्षुब्ध मानव समाज को परमशान्ति को प्रदान करने वाला है।

2.2.7 जीव

गीता का एक विषय है – जीव। इसके बारे में भगवान् कहते है कि वह जो जीव है वह मेरा ही अंश है –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। (15/7)

अर्थात् मुझ परमेश्वर का ही अनादि एक अंश संसार में जीव बनकर प्रकृति में अवस्थित होकर के मन के साथ पंच इन्द्रियों को आकर्षित करता है। परमात्मा की दो प्रकृतियाँ – 1. अपरा प्रकृति और 2. परा प्रकृति। अपरा प्रकृति जड़ है इसमें सभी भौतिक विद्यमान होते है, वही परा प्रकृति चेतन जीव है। इस चेतन जीव को 'अक्षर' और 'क्षेत्रज्ञ' पुरुष भी कहा जाता है। जीव परमात्मा का सूक्ष्म शरीर है और जगत् स्थूल शरीर है। ईश्वर सभी जीवों और जगत् की आत्मा है। जब जीव शरीर को धारण करता है और फिर उस शरीर का त्याग करता है तो वह जीव उसी प्रकार इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है जिस प्रकार वायु अपने साथ गन्धों को साथ लेकर चलता है। ज्ञानेन्द्रियों के साथ तथा मन के योग से जीव विषयों का सेवन करता है। प्रत्येक अवस्था में स्थित इस जीव आत्मा को ज्ञानी लोग ही पहचान सकते है। मलिन अन्तःकरण से युक्त अज्ञानी के लिए इसे जानना मुश्किल है।

यथा –

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।। 13/33

अर्थात् जिस प्रकार एक ही सूर्य समस्त पृथ्वी को प्रकाशित करता है उसी प्रकार आत्मा भी जीव के सम्पूर्ण शरीर को प्रकाशित करती है। परमेश्वर ने गीता में जीव की मुख्य रूप से तीन गतियों का वर्णन किया है – 1. उर्ध्वगति, 2. मध्यगति, 3. अधोगति। जिस मनुष्य में सत्व गुण की अधिकता होती है वह उर्ध्वगति को प्राप्त करता है। (14/14) तमोगुण की तात्कालिक वृत्ति के बढ़ने पर मरने वाला तथा तमोगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य अधोगति में जाता है। (14/15) रजोगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य मध्यगति को प्राप्त करता है। यह जीवात्मा किस भाव से सत्वादि गुणों से युक्त होकर शरीर में अवस्थित रहता है, विषयों का उपभोग करता है और किस भाव शरीर को छोड़कर चला जाता है, उसे अज्ञानी मनुष्य नहीं देख सकते है। उनका मन विषयों के आकर्षण से बहिर्मुख रहता है किन्तु इसके विपरित ज्ञानी मनुष्य का मन अन्तर्मुखी रहता है इसी कारण ज्ञानी लोग ही आत्मा का दर्शन कर सकते हैं। भगवान् जीवात्मा का वर्णन करते हुए कहते है कि इस संसार में दो प्रकार के पुरुष होते हैं – 1. अविनाशी और 2. विनाशशील। इसमें यह जीव जगत विनाशशील है और इससे अलग यह आत्मा अविनाशी है।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थो अक्षरः उच्चते। (15/16)

वेदान्त दर्शन में जीव का वर्णन इस प्रकार किया गया है – शंकर के अनुसार अनादि अविद्या के कारण आत्मा अनेक रूपों में प्रतिभासित होने लगती है। इसी को अद्वैत वेदान्त में 'जीव' कहा जाता है। जीव अपने ईश्वर से भिन्नकर्ता है या इसे भोक्ता समझने लगते है। जबकि जीव और ब्रह्म में कोई तात्विक भेद नहीं है –**जीवो ब्रह्मनैव नापरः** इस व्यवहार की दृष्टि से जीव अलग है और ईश्वर अलग है। क्योंकि

जीव माया का कार्य है। माया के कारण ही जीव अपने वास्तविक स्वरूपों को नहीं जान पाता है किन्तु गीता में भगवान् ने जीव को अपना एक अंश स्वीकार किया है।

2.2.8 मोक्ष

गीता का अगला मुख्य विषय है – मोक्ष। मनुष्य की सभी इच्छाओं और आवश्यकताओं उद्देश्यों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। गीता कभी भी नहीं कहती कि संसार का त्याग देने से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मोक्ष से तात्पर्य आवागमन के बन्धन से मुक्ति पाना है। गीता में यह अन्तिम निष्कर्ष के रूप में वर्णित किया गया है। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना भी परमपद प्रदान कर सकती है। गीता में कहा गया है –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। 18/62

अर्थात् ''हे भारत ! तू सब प्रकार से उस परमात्मा की ही शरण में ही जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तुम्हें परम शान्ति तथा सनातन परम धन प्राप्त होगा।'' गीता के अन्तिम अध्याय का नाम ''मोक्षयोग'' ही है। ईश्वर ने कहा है कि त्रिविधत्याग और संन्यास मुख्य है। काम्यकर्म का त्याग ही संन्यास है और सभी कर्मों के जलमात्र का त्याग करना ही यथार्थ त्याग है और जो कर्मफल का त्याग करने वाला है वही यथार्थ संन्यासी है। कोई भी देहधारी जीव इस देह में वर्तमान रहते हुए अपने सभी कर्मों का त्याग नहीं कर सकता है क्योंकि श्वास, प्रश्वास की स्वाभाविक वृत्ति भी कर्म है। भगवान की पूजा, अर्चना, स्मरण, भक्ति, मनन सभी कर्म है। धर्म भी कर्म है। इसी कारण गीता कर्मत्याग का उपदेश नहीं देती है। कर्मफल का त्याग करके अपने स्वधर्म का अनुष्ठान करना ही भगवान् का स्पष्ट रूप से निर्देश है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करते है और जो नित्य मुझमें ही लीन रहते हैं, उनके योगक्षेम का भार मैं स्वयं उठाता हूँ। कहा भी गया है –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (गीता 9/22)

इस प्रकार श्लोक में कहा गया है कि अपना आत्मसमर्पण उस ईश्वर के सामने पूरी तरह से कर दो। इस प्रकार मोक्ष, आत्म ज्ञान के परमपुरुष के स्वरूप की अनुभूति है। वह ईश्वर नित्य, शुद्ध, चैतन्य, अखण्ड और आनन्द स्वरूप है। यह आत्मिक स्वरूप है और आत्मा के स्वरूप का ज्ञान मोक्ष है। जीव अविद्या–अज्ञान के कारण ही अहंकार से युक्त होकर स्वयं को शुभ–अशुभ कर्मों का कर्ता और भोक्ता समझता हैं और जन्म के बन्धन में फंस कर घूमता रहता है। यह उसका बंधन है। जब आत्मज्ञान के द्वारा अविद्या की निवृत्ति हो जाती है तो जीव नित्य, शुद्ध, ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लेता है। किन्तु उस जीव को न तो बन्धन होता है और न ही मोक्ष होता है। केवल अज्ञान के कारण ही वह बन्धन और मुक्ति का अनुभव करता है। इसलिए बन्धन और मुक्ति वस्तुतः मिथ्या है। केवल व्यवहारिक सत्यता है। परमेश्वर आत्मा का पूर्ण समर्पण चाहता हैं और उसके बदले में हमें आत्मा की वह शक्ति प्रदान करता है जो सभी परिस्थितियों को बदल देती है –

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (18/16)

अर्थात् सभी मनुष्यों को छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा, तुम दुःखी मत होओ, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा। जैसे सूर्य किरणों के द्वारा हमें स्पर्श करता है, इन्द्रिय शक्ति भी उसी प्रकार विषयों को स्पर्श करती है। मन के द्वारा संयमित इन्द्रियाँ नियमित होने पर जैसे दीप में ज्वाला प्रकाशित होती है, आत्मा भी उसी प्रकार देह में प्रकाशित होती है। पाप कर्मों के क्षीण होने पर जीव को ज्ञान उत्पन्न होता है –

यथा दर्शतले प्रख्ये पष्यत्यात्मानमात्मनि।
इन्द्रियाणिन्द्रियार्थाश्च महाभूतादि् पञ्च च।। गीतारहस्य
मनो बुद्धिरहंकरमव्यक्तं पुरुषं तथा
प्रसंख्यान परावाप्तौ विमुक्तो बन्धनैर्भवेत्।। गीतारहस्य

अर्थात् जैसे दर्पण में अपने रूप का दर्शन किया जाता है, उसी प्रकार जीव, निर्मल बुद्धि में इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय, पंचमहाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति तथा पुरुष को भी देखता है। तब विवेकज्ञान द्वारा देहन्द्रियादि से आत्मा की पृथक्ता का निश्चय होता है। फिर देह आदि सभी बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है कि मैं 'परमज्योति ब्रह्म स्वरूप' हूँ जब वह इस प्रकार की उपलब्धि को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। गीता में वर्णित विश्वरूप दर्शन का एक मात्र लक्ष्य उस परमपिता परमात्मा का साक्षात्कार करना ही है। फिर चाहे वह ज्ञानयोगी हो भक्तियोगी हो, या फिर कर्मयोगी हो, सभी उस परमश्रद्धेय की दृष्टि में एक है और मोक्ष प्राप्ति के योग्य है। इस प्रकार ईश्वर ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि से अष्टांग योग कहे गए है।

2.3 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने गीता के प्रमुख विषय वस्तु को जाना। इसको पढ़कर आपने जान लिया होगा कि निःस्वार्थ भाव से सभी की सेवा करनी चाहिए। कर्मफल में आसक्ति नहीं होनी चाहिए, तभी ईश्वर के समीप जा सकेंगे। आपने ये भी जाना कि ज्ञानयोग और भक्तियोग में अन्तर है। अपने वास्तविक स्वरूप को समझना ही ज्ञानयोग है और अपने आपको उस ईश्वर के अर्पण कर देना ही भक्तियोग है। परमात्मा को पाने के लिए ज्ञान और भक्ति में से कोई भी मार्ग अपनाकर ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। आप ये भी जान गए होंगे कि शरीर और शरीर के सम्बन्धियों से कोई मोह नहीं रखना है। क्योंकि शरीर की मृत्यु निश्चित है और आत्मा, अजर, अमर, अविनाशी है। जैसे मनुष्य पुराने कपड़े बदलकर नए धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग करके नए शरीर को चली जाती है। अतः सभी से ममत्व निकाल कर ईश्वर में मन लगाओ। उसके पश्चात् आपने जाना कि इन्द्रियाँ से ही हमें सुखी होते है। इन्द्रियाँ ही दुःख का कारण है। इसलिए इन्द्रियों के उनके विषयों से हटाकर, विकारों से मुक्त होकर उस ईश्वर में स्थित होना ही स्थितप्रज्ञ है। स्थितप्रज्ञ मनुष्य सुख में ज्यादा सुखी नहीं होता और दुःख में ज्यादा दुःखी नहीं होता। इसके पश्चात् उस परमेश्वर के स्वरूप को जाना जो सबका नियन्ता है। वह अन्तर्यामी है वह निर्विकारी, निराकारी, सबसे श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। इसके पश्चात् आपने जीव के बारे में जाना, इस जीव को 'अक्षर' और 'श्रेत्रज्ञ' भी कहा जाता है। यह जीव ही इन्द्रियों के वशीभूत होकर बन्धन में फंस जाता है। अन्त में मोक्ष को स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि उस ईश्वर के सामने पूरी तरह से आत्मसमर्पण कर दो तो वह आत्मा को पूर्ण शक्ति प्रदान करके सभी पापों से मुक्त कर देता है और

जीव के समस्त कर्मों के क्षीण होने पर वह परमपद को प्राप्त करता है। इस प्रकार आप गीता मुख्य विषयों से अवगत हो गए होंगे।

बोध प्रश्न 1

खाली स्थान भरो –

1. गीता को ..... कहा गया है।
2. गीता में आत्मा को ..... कहते है।
3. जिसकी बुद्धि ईश्वर में स्थित है उसे ..... कहते है।
4. गीता में ईश्वर की ..... प्रकृतियों का वर्णन है।
5. मोक्षयोग ..... अध्याय का नाम है।

बोध प्रश्न 2

1. गीता में कितने योग मार्ग बतलाए है ? (3/4)
2. गीता में अर्जुन के द्वारा कितने श्लोक बोले गए है। (81/84)
3. गीता में ज्ञानयोगी को क्या कहा गया है। (स्थितप्रज्ञ/ज्ञानी)
4. भगवान् ने कैसा कर्म करने की बात कही है। (निष्काम/सकाम)
5. मनुष्य जीव का अन्तिम लक्ष्य क्या है। (भोग/मोक्ष)

बोध प्रश्न – 3 सही गलत का निशान लगाओ –

1. गीता कर्मत्याग करने का उपदेश देती है – ( )
2. वास्तविक स्वरूप को जानना ज्ञानयोग है – ( )
3. स्थिर बुद्धि को ही स्थितप्रज्ञ कहा जाता है – ( )
4. भगवान ने 540 श्लोक कहे हैं – ( )
5. शरीर विनाशी है – ( )

अभ्यास प्रश्न –

1. आत्मा के स्वरूप को समझाइए।
2. 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए ?
3. स्थितप्रज्ञ का लक्षण देते हुए विस्तार से बताइए ?
4. ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या कीजिए ?
5. ज्ञानयोग व भक्तियोग में क्या अंतर है ?

2.4 शब्दावली

सर्वभूतानि – सभी प्राणियों में
ईष्टते – देखता है।
सर्वभूतस्थम – सभी जीवों में स्थित
समदर्शन – समभाव से देखने वाला
प्रणष्यामि – अदृश्य होता हूँ
गवि – गाय में
हस्तिनि – हाथी में

शुनि – कुत्तें में
श्वपाके – चाण्डाल
अनन्याः – जिसका कोई लक्ष्य न हो
पर्युपासते – ठीक से पूछते हैं।
अभियुक्तानाम् – भक्ति में लीन मनुष्यों की
योग – आवश्यकताएं
क्षेम – सुरक्षा, आश्रम
वहामि – वहन करता हूँ।
अनन्यचेतः – अविचलित मन से
सतत – निरन्तर
नित्यक्षः – नियमित रूप से
मन्मनाभव – मेरे विषय में ही सोचो।
मद्या जी – मेरा पूजक
प्रतिजाने – प्रतिज्ञा करता हूँ
सम्पद्यते – प्राप्त करता है
एधांसि – ईधन को
समिद्धः – जलती हुई
भस्मसात्ः – राख
मतपरायणः – मेरी भक्ति में अनुरक्त
युज्यस्व – लड़ो
अवाप्स्यसि – प्राप्त करोगे
क्रियमाणानि – किये जाकर
अहंकारविमूढ – अहंकार से मोहित
विषयाः – इन्द्रियभोग की वस्तुएँ
निराहारस्य – निषेधात्मक प्रतिबन्धों से
रसवर्जम् – स्वाद का त्याग करता है।
विनिवर्तन्ते – दूर रहने के लिए अभ्यास की जाती है।
संहरते – समेट लेता है।
कूर्म – कछुआ
इन्द्रिय अर्थेभ्य – इन्द्रियविषयों से
प्रोतम् – गुथाँ हुआ
मणिगण – मोतियों के दाने
कृत्सनस्य – सम्पूर्ण
क्षर – च्युत

अक्षर – अच्युत

बिभर्ति – पालना करता है।

कर्षति – संघर्ष करता है।

2.5 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न 1

1. सर्वशास्त्रमयी
2. अजर, अमर, अविनाशी
3. स्थितप्रज्ञ (4) दो (5) 18वें

2 3, 84, स्थितप्रज्ञ, निष्काम, मोक्ष

3 गलत, सही, गलत, गलत, सही

अभ्यास प्रश्न विद्यार्थी स्वयं करें।

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप – भक्तिवेदान्तबुक ट्रस्ट, 1990
2. श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यसहित – गीता प्रेस, गोरखपुर
3. श्रीमद्भगवद्गीता – साधकसंजीवनी हिन्दी टीका – गीताप्रेस गोरखपुर
4. योगदर्शन – महर्षि पतंजलि।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 गीता में अध्याय विभाजन और संक्षिप्त विवरण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गीता में अध्याय विभाजन

- 3.2.1 अर्जुन विषादयोग
- 3.2.2 सांख्ययोग
- 3.2.3 कर्मयोग
- 3.2.4 ज्ञानकर्म संन्यास योग
- 3.2.5 कर्म संन्यास योग
- 3.2.6 आत्मसंयम योग
- 3.2.7 ज्ञान–विज्ञान योग
- 3.2.8 अक्षरब्रह्म योग
- 3.2.9 राजविद्याराजगुह्ययोग
- 3.2.10 विभूति योग
- 3.2.11 विश्वरूपदर्शन योग
- 3.2.12 भक्ति योग
- 3.2.13 क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग
- 3.2.14 गुणत्रयविभाग योग
- 3.2.15 पुरुषोत्तम योग
- 3.2.16 दैवासुरसम्पद्विभाग योग
- 3.2.17 श्रद्धात्रयविभाग योग
- 3.2.18 मोक्षसंन्यास योग

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- भगवद्गीता का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अष्टादश अध्यायों की विषयवस्तु का विषयज्ञान हो सकेगा।
- आत्मा की अमरता का ज्ञान हो सकेगा।
- निष्काम कर्म के बारे में जान सकेंगे।
- आत्मज्ञान हो सकेगा।

- विभूतियों के बारे में जान सकेंगे।
- गुणत्रय का ज्ञान हो पाएगा।
- श्रद्धा के विभाग को ज्ञान पाएंगे।
- मोक्ष के बारे में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाइयों में आपने भगवद्गीता में प्रतिपादित मुख्य विषय को पढ़ा व समझा। आप यह जानते हैं कि भगवद्गीता सम्पूर्ण विश्व साहित्य का अनुपम ग्रन्थ है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अट्ठारह अध्यायों में बंटा हुआ है और इन अध्यायों के नाम हैं – अर्जुनविषाद–योग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानकर्मसंन्यासयोग, कर्मसंन्यासयोग, आत्मसंयमयोग, ज्ञान–विज्ञानयोग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्मरोग, विभूतियोग, विश्वरूपदर्शनयोग, भक्ति–योग, क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग, गुणत्रयविभागयोग, पुरुषोत्तमयोग, दैवासुरसम्पद्विभागयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग, मोक्षसंन्यासयोग। इस इकाई में इन्हीं अध्यायों का हम संक्षिप्त रूप से अध्ययन करेंगे।

इस इकाई में हम जानेगें कि कैसे अर्जुन कुरूक्षेत्र के युद्ध में अपने गुरुजन, भाई, पितामह आदि सभी को देखकर दुःखी हो जाता है और युद्ध के लिए मना कर देते है फिर कैसे श्री कृष्ण जी अर्जुन को विभिन्न विषयों जैसे सांख्य योग, कर्म के सिद्धान्त, आत्मा की अमरता, ज्ञान, विज्ञान, भक्तियोग, पुरुषोत्तम योग आदि का ज्ञान कराते हुए, अपने विश्वरूप का ज्ञान कराते हुए श्रद्धा और मोक्ष का भी ज्ञान प्रदान किया है जिससे अर्जुन धर्मयुद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है।

यहाँ पर श्रीकृष्ण अर्जुन के माध्यम से हम सभी को भी यही उपदेश देना चाहते है कि कैसे निष्काम कर्म को करते हुए हम अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकते हैं। अतः इस इकाई में हम भगवद्गीता के सभी अध्यायों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे और ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। आज हम सभी इस कर्मभूमि पर अर्जुन है। जो अपने कर्त्तव्यपालन में मूढ बने हुए है। भगवद्गीता के ज्ञान से अच्छे–बुरे कर्मों का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को उच्च बना सकेंगे।

3.2 गीता में अध्याय विभाजन

गीता संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का अनमोल ग्रन्थ है। यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के मुख रूपी अरविन्द से निकली हुई दिव्य वाणी है। इसमें 18 अध्याय और 700 श्लोक है। इसके संकलनकर्ता महर्षि वेदव्यास है। आज गीता का विश्व की कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। भगवद्गीता के 18 अध्यायों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है –

3.2.1 अर्जुन विषादयोग

सम्पूर्ण भगवद्गीता अष्टादश अध्यायों में रचित है प्रत्येक अध्याय ही एक–एक योग है। गीता के प्रथम अध्याय का नाम है – अर्जुन विषाद योग है, जिसमें 47 श्लोक है। गीता की शुरूआत में पृष्ठभूमि एक युद्ध क्षेत्र है। यहाँ पर श्रीकृष्ण अधर्म का नाश तथा धर्म की रक्षा करने के लिए अवतार लिया हुआ है। युद्ध क्षेत्र में कौरव और पाण्डव अपने राज्य के अधिकार को लेकर युद्ध करने के लिए खड़े हुए है। कौरवों के पास

एकादश अक्षौहिणी सेना और पाण्डवों के पास सप्त अक्षौहिणी सेना विद्यमान है। जो सभी कुरूक्षेत्र के युद्धभूमि पर खड़े हुए है। शारीरिक बल के प्रयोग से ही इस युद्ध का निर्णय होना है। जब अर्जुन दोनों पक्ष की सेनाओं के बीच में खड़े होते है तब वह नजर उठाकर देखता है तो उसे अपने सगे सम्बन्धी दिखाई देते हैं, जिस कारण अर्जुन का मन दुःखी हो जाता है और वह कहता है कि अपने भाई, गुरु आदि का वध करके मुझे राज्य नहीं चाहिए। मैं तो भिक्षा मांग कर अपना जीवन व्यतीत कर लूंगा लेकिन अपनों को नहीं मारूंगा। ऐसा कहकर अर्जुन अपने धनुष को नीचे रखकर बैठ जाता है। तब भगवान श्रीकृष्ण 'किं कर्त्तव्यविमूढ' अर्जुन को जो उपदेश देते है वहीं अष्टादश अध्याय वाली श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित है।

संजय उवाच –

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः।। श्लोक 47

अर्जुन के अनुसार युद्ध करना सम्पूर्ण अनर्थो का कारण है। युद्ध करने से कुटुम्बियों का नाश होगा और परलोक में नरक की प्राप्ति होगी आदि बातों को युक्ति और प्रमाण से कहकर शोक से अत्यन्त व्याकुल मन वाले युद्ध न करने का पक्का निश्चय कर लिया। जिस रणभूमि में वे हाथ में धनुष लेकर उत्साह के साथ आए थे, उसी रणभूमि में उन्होंने अपने बाएं हाथ से गाण्डीव धनुष को और दायें हाथ से बाण को नीचे रख दिया और स्वयं रथ के मध्य भाग में अर्थात् जहाँ पर दोनों सेनाओं को देखने के लिए खड़े थे, वहीं पर ही शोकमुद्रा में बैठ गए।

भगवान ने अर्जुन को भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण को और कुरूवंशियों को देखने के लिए कहा जिससे उन्हें देखकर अर्जुन के अन्दर छिपा हुआ मोह जागृत हो गया। मोह के जागृत होने पर अर्जुन कहते हैं कि इस युद्ध में दुर्योधन आदि हमारे कुटुम्बी मारे जाएंगे और कुटुम्बियों का मरना ही बड़े नुकसान की बात है।

3.2.2 सांख्य योग

गीता के द्वितीय अध्याय का नाम सांख्य योग है। सांख्य योग में विवेक की बड़ी आवश्यकता है और सांख्य योग से ही भगवान् ने अपना उपदेश आरम्भ किया है। अतः इस अध्याय का नाम सांख्य योग रखा गया है। इस अध्याय में 72 श्लोकों का समावेश है। यहाँ सांख्य शब्द का अर्थ है – ज्ञान और योग शब्द का अर्थ है – कर्म। ज्ञान और कर्म पर विशेष रूप से चर्चा होने के कारण भी इस अध्याय का नाम सांख्य योग रखा गया है। अर्जुन के विषाद को दूर करने के लिए इस अध्याय में विशेषतया श्रीकृष्ण के द्वारा आत्मतत्व का उपदेश दिया गया है। आत्मा और शरीर की नित्यता और अनित्यता का वर्णन किया गया है। कहा भी गया है –

वांसांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। श्लोक 22

मनुष्य जैसे पुराने कपड़ों को छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही अर्थात् आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नये शरीरों में चली जाती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः।। श्लोक 23

शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती अर्थात् जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग के सम्बन्ध में भी उपदेश दिये है। यथा –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। श्लोक 2/47

अर्थात् कर्त्तव्य कर्म करने में तेरा अधिकार है, फल में तेरा अधिकार नहीं है। अतः तू कर्मफल का हेतु भी मत बन और तेरी अकर्मण्यता से भी आसक्ति न हो। निष्काम कर्म योग नामक उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भले ही लक्ष्य करके प्रकट किया है, जबकि यह समस्त बुद्धिजीवी सद् असत् विवेकी मनुष्य जाति के लोग इनसे विशेष रूप से सीख लेकर उपकृत होंगे।

ज्ञान श्रेष्ठ है या कर्म श्रेष्ठ है ? इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में इस अध्याय का महत्वपूर्ण योगदान है। निष्काम कर्मयोग के साथ ज्ञान का मेल करके निष्काम भक्ति रूप से अमृत रस से सिंचित होकर यह अध्याय मंगलमय दीपशिखा की तरह मनुष्यों के जीवन को आलोकित कर रही है। निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों के संयोग होने पर परमलक्ष्य स्थितप्रज्ञ एवं आत्मस्वरूप साक्षात्कार रूपी अवस्था को प्राप्त होता है इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। यह ब्राह्मी स्थिति ही मोक्ष है। इस ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेने के बाद ही मनुष्य निष्काम भाव से अपने वर्ण व आश्रम के अनुसार शास्त्रों में बताए गए कर्मों को करके अन्त में ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त करता है। इस अध्याय में बीसवें श्लोक के बाद ही श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद आरम्भ होता है।

3.2.3 कर्मयोग

गीता के तृतीय अध्याय का नाम 'कर्मयोग' है। इसमें 43 श्लोक है। कर्मयोग का जितना विषाद वर्णन तीसरे अध्याय में है, उतना गीता के अन्य अध्यायों में नहीं है। तीसरे अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने प्रश्न किया कि आपके मत में जब बुद्धि श्रेष्ठ मान्य है, तो फिर आप मुझे घोर कर्म (युद्ध) में क्यों लगा रहे हो ? इसके उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण ने चौथे श्लोक से 29वें श्लोक तक विविध प्रकार से कर्त्तव्य कर्म करने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए यह सिद्ध किया है कि कर्त्तव्य कर्म करने से ही समबुद्धि प्राप्त होती। फिर तीसवें श्लोक में भगवत् निष्ठा के अनुसार कर्त्तव्य कर्म करने की विशेष विधि बतायी कि विवेकपूर्ण सम्पूर्ण कर्मो को मेरे अर्पण करके तथा निष्काम, ममता रहित होकर, सन्ताप रहित होकर शास्त्रों में बताए कर्त्तव्य कर्मो को करना चाहिए। कर्त्तव्य कर्म की इस विधि को अपना मत कहते हुए भगवान् ने 31–32वें श्लोकों में अन्वय और व्यतिरेक विधि से अपने इस मत की पुष्टि की है। 35वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि **'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'** अर्थात् अपने धर्म में स्थित रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मरना भी श्रेष्ठ है। इस पर अगले श्लोक में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि मनुष्य न चाहते हुए भी किससे प्रेरित होता हुआ पाप कर्म करता है ? इसके उत्तर में भगवान् ने 'काम' अर्थात् कामना को ही सारे पापों, अनर्थो का हेतु बताकर अन्त में कामरूप शत्रु को मार डालने की आज्ञा दी है।

3.2.4 ज्ञानकर्म संन्यास योग

इस चतुर्थ अध्याय में 42 श्लोक है। इसका नाम तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए कर्मयोग और सांख्ययोग का वर्णन होने से इस चौथे अध्याय का नाम ज्ञानकर्म संन्यास योग है। इसमें भगवान् ने अपने अवतरित होने का रहस्य और तत्व के सहित कर्मयोग तथा संन्यास योग का अर्थ तथा परमात्मा के तत्व का यथार्थ रीति से वर्णन किया गया है। इसमें प्रारम्भ में कर्मयोग की प्रशंसा की गई है। इसी अध्याय में चार वर्णों की उत्पत्ति, जन्म, कर्मरूपी, लीलातत्व तथा कर्म, अकर्म और विकर्म का विश्लेषण किया है। ज्ञान क्या है ? ज्ञान लाभ के उपाय, फल और अधिकारी का विचार, कर्मभेद, वर्णभेद, ज्ञान प्राप्ति के आन्तरिक व बाहरी साधन आदि अनेक आध्यात्मिक विषयों का उपदेश दिया है। निष्काम कर्म योग के द्वारा ही ज्ञान योग को प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि भगवान् स्वयं कहते हैं कि –

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। श्लोक 33

अर्थात् हे अर्जुन समस्त कर्म और पदार्थ ज्ञान के उत्पन्न होने पर समाप्त हो जाते है। कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान अलग–अलग नहीं है अपितु परस्पर एक–दूसरे के सहायक है। इस अध्याय में वर्ण विभाग का भी वर्णन किया गया है। यथा –

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। श्लोक 13

अर्थात् मेरे द्वारा गुणों और कर्मों के विभागपूर्वक चारों वर्णों की रचना की गई है। श्रीकृष्ण जी के लिए कुछ भी अप्राप्त नहीं है, वह भी निर्लिप्त होकर कर्म का सम्पादन करते हैं। इससे कर्म करने की पद्धति का यथार्थ संकेत मिलता है। इसके अनन्तर बाह्य कर्म, विविध लाक्षणिक यज्ञों की विशेषताओं का वर्णन, ज्ञान क्या है ? ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता व ज्ञान लाभ का क्या उपाय है ? ज्ञान लाभ का फल और इसके अधिकारी कौन है ? आदि अनेक तत्वों की आलोचना इस अध्याय में की गई है। यज्ञों का वर्णन करने के पश्चात् इसके भेद बतलाए गए है तथा इसमें द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ को उत्तम बतलाया गया है।

3.2.5 कर्म संन्यास योग

इस अध्याय में कर्मयोग और सांख्य योग दोनों का ही वर्णन हुआ है, इसलिए इस अध्याय का नाम कर्मसंन्यास योग है। पंचम अध्याय 29 श्लोक से युक्त है। इसमें अर्जुन भगवान् से प्रश्न पूछते है कि सांख्य योग और कर्मयोग दोनों में से कौन सा श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर देते हुए श्री कृष्ण कहते है कि दोनों ही श्रेष्ठ तथा कल्याणकारी मार्ग है। परन्तु कर्म संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग भी श्रेष्ठ है। इस अध्याय के 10वें और 11वें श्लोक में बताया गया है कि जो भक्त योगी सम्पूर्ण कर्मों को भगवान में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग करके कर्म को करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता और जो कर्म योगी है वह आसक्ति का त्याग करके केवल इन्द्रियाँ, शरीर, मन, बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही कर्म करते हैं। आगे कहा गया है कि अज्ञान के द्वारा जब ज्ञान को ढक लिया जाता है तब जीव को मोह–माया घेर लेती है। इसलिए ज्ञान का महत्व भी बतलाया है और ज्ञान योग के एकान्त साधन का भी वर्णन किया गया है। 22वें श्लोक में भी कहा गया है –

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। श्लोक 22

अर्थात् हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले भोग ही आदि अन्त वाले दुःख का कारण है और बुद्धिमान विवेकशील मनुष्य को इसमें आसक्त नहीं होना चाहिए। योगी के विषय में भी कहा गया है कि जो काम क्रोध के वेग को सहन कर लेता है वही पुरुष योगी और सुखी है। कर्म त्याग गीता का उपदेश नहीं है अपितु अपने धर्म का पालन और कर्मफल त्याग ही गीता का उपदेश है क्योंकि कर्म को त्याग करके संसार में रहना संभव ही नहीं है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यही है कि फल की आसक्ति ही बन्धन का कारण है और फल का त्याग ही यथार्थ संन्यास और आसक्ति का त्याग ही मोक्ष है।

3.2.6 आत्मसंयम योग

आत्मसंयम अर्थात् मन का संयम करने से ध्यानयोगी को योग अर्थात् समान भाव का अनुभव हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'आत्मसंयमयोग' रखा गया है। इस अध्याय में 47 श्लोक है। इस अध्याय के शुरूआत में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति कर्मफल का आश्रय न लेता हुआ कर्त्तव्य कर्म को करता है, वहीं संन्यासी तथा योगी है, केवल अग्नि का या क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं कहलाता। इसमें यह भी बताया गया है कि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है तथा स्वयं ही अपना शत्रु भी है। वह कैसे अपना मित्र और शत्रु है यह बताते हुए कहते हैं कि –

बन्धुरात्माऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।। श्लोक 6

अर्थात् जिसने अपने आपको जीत लिया है अर्थात् असत् पदार्थों का त्याग कर दिया है। वह स्वयं ही अपना बन्धु है तथा जिसने अपने आपको नहीं जीता है ऐसे अनात्मा का आत्मा ही शत्रु की तरह बर्ताव करता है। इस अध्याय में परमात्मा ने ध्यान योग के लिए भी प्रेरणा दी है, ध्यान योग करने वाले को शुद्ध भूमि पर जिस पर क्रमशः कुश, मृगछाला और वस्त्र बिछे हुए है, जो न तो बहुत ऊँचा हो ओर न ही बहुत नीचा। ऐसे आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों को वश में करके, मन को एकाग्रचित करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान करता हुआ योगी अपने आपको सदा परमात्मा में लगाता हुआ पापरहित होकर सुखपूर्वक ब्रह्मप्राप्ति रूप अत्यन्त सुख को प्राप्त करता है।

श्रीकृष्ण ने सांख्य योग और कर्मयोग में से कर्मयोग को श्रेष्ठ बताया और जो तत्व कर्मयोग से प्राप्त होता है वही ध्यानयोग से भी प्राप्त होता है – इसी बात को लेकर ध्यान योग का वर्णन किया गया है। ध्यान योग में मन की चंचलता बाधक होती है – इसी बात को लेकर अर्जुन ने मन के विषय में प्रश्न किया। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा है कि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में किया जा सकता है। फिर अर्जुन ने पूछा कि योग का साधन करने वाला अगर अन्त समय में योग से विचलित हो जाए तो उसकी क्या दशा होगी ? इस पर योगभ्रष्ट गति का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह योगभ्रष्ट पुण्य कर्म करने वालों के लोकों को प्राप्त करता है, फिर वहाँ बहुत वर्षों तक रहकर, फिर इस धरती पर शुद्ध श्रीमानों के घर में जन्म लेता है और अन्त में योग की विशेष महिमा कहकर अर्जुन को योगी बनाने के लिए स्पष्ट रूप से आज्ञा दी।

3.2.7 ज्ञान–विज्ञान योग

इस सातवें अध्याय में ज्ञान और विज्ञान का वर्णन किया गया है। भगवान् इस सम्पूर्ण जगत् के महाकारण है – ऐसा दृढ़तापूर्वक स्वीकार करना 'ज्ञान' है। ऐसे ही भगवान् के सिवाय कुछ भी नहीं है – ऐसा अनुभव हो जाना ही 'विज्ञान' है। ज्ञान और विज्ञान से परमात्मा के साथ नित्ययोग का अनुभव हो जाता है अर्थात् 'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं' इस परम प्रेमरूप नित्य सम्बन्ध की जागृति हो जाती है। इसलिए इस सातवें अध्याय का नाम ज्ञान विज्ञान योग रखा गया है। यह अध्याय 20 श्लोकों में वर्णित है।

भगवान् ने इस अध्याय में पहले परिवर्तनशील को 'अपरा' और अपरिवर्तनशील को 'परा' नाम से कहा है। फिर इन दोनों के संयोग से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति बतलायी है और अपने को सम्पूर्ण संसार का प्रभव और प्रलय बताया है। इसी प्रसंग में भगवान् ने 17 विभूतियों के रूप में कारणरूप से अपनी व्यापकता बताई है। जो योगी निरन्तर ईश्वर चिन्तन करते हुए श्री भगवान् वासुदेव को विशेष रूप से जान सके वही 'युक्ततम' है। इस अध्याय में भगवान् के विमुख ओर सम्मुख होने का वर्णन है। तात्पर्य यह है कि जड़ता की तरफ वृत्ति रखने से मनुष्य बार–बार जन्म लेता है और मरता रहता है। अगर वे जड़ता से विमुख होकर भगवान् के सम्मुख हो जाते है, तो वे सगुण–निराकार और सगुण साकार ऐसे भगवान् के समग्ररूप को जानकर अन्त में भगवान् को ही प्राप्त जाते हैं।

3.2.8 अक्षरब्रह्म योग

गीता का आठवां अध्याय 28 श्लोकों से सुशोभित है। 'अक्षर' और ब्रह्म दोनों ही शब्द भगवान् के निर्गुण निराकार, सगुण निराकार और सगुण साकार – इन तीनों स्वरूपों के वाचक है। इन तीनों स्वरूपों में से किसी भी स्वरूप का चिन्तन करने से परमात्मा के साथ योग हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'अक्षर ब्रह्मयोग' रखा गया है। इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप के वर्णन के प्रसंग में ब्रह्मतत्व ब्रह्मोपासना और अन्तकाल में ईश्वर चिन्ता की विशेष रूप से आलोचना हुई है। भगवान् ने ईश्वर परायण होने का उपदेश दिया है। श्री कृष्ण जी समझाते हुए कहते है कि मृत्यु काल में व्यक्ति जिस भाव को याद करते हुए अपनी देह को छोड़ता है तो उसी भाव को प्राप्त हो जाता है। अतः अन्तिम समय में जो मुझे याद करता है वह मुझे ही प्राप्त करता है तथा मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन के प्रति भी श्री कृष्ण भगवान् का स्पष्ट आदेश है। 'मामनुस्मर युध्य च' यह भाव केवल भगवान की भक्ति से ही संभव हो सकता है। श्री कृष्ण जी ने कहा है कि जो भक्त विषयों की चिन्ता को छोड़कर सदा भगवान का स्मरण करता है उसे अनायास ही उनका लाभ होता है और उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। इसके बाद श्री कृष्ण भगवान् ने कहा है कि जो इन्द्रिय संयम द्वारा प्राण को भ्रू–युगल के बीच में स्थापित करके मन को संयमित रखते हुए और समानतत्व की चिन्ता करते हुए देह का त्याग करता है तो उसे परमगति प्राप्त होती है। इस अध्याय का अन्तिम श्लोक विशेष भावपूर्ण तथा गम्भीर है। यथा –

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।। **श्लोक 28**

अर्थात् जो योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर, वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो–जो पुण्यफल कहे गये हैं, इन सभी पुण्यफलों का जो अतिक्रमण या उल्लंघन चिन्तन करना है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

3.2.9 राजविद्याराजगुह्ययोग

इस अध्याय में भगवान् ने जो 'मया ततमिदं सर्वम्' आदि उपदेश दिया है वहीं सब विद्याओं का राजा है और जो भगवान् ने अपने आपको प्रकट करके अर्जुन को अपने शरण होने और अपने में मन लगाने के लिए कहा है। वह सम्पूर्ण गोपनीय भावों का राजा है। इन दोनों राजविद्या और राजगुह्य को तत्त्व से समझ लेने पर योग का अनुभव हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'राजविद्याराजगुह्ययोग' रखा गया है। इस अध्याय में 34 श्लोक है।

इस अध्याय में विशेष रूप से 'ईश्वरीय योग–सामर्थ्य, भगवान् के भक्त, देवी सम्पदा सम्पन्न और अभक्त आसुरी सम्पदा मुक्त, ईश्वर का विश्वानुगत् भाव, योगक्षेम और भगवद्भक्ति के छल का स्वरूप, श्री भगवान भक्ति के लिए इच्छुक, ईश्वर में एकान्त शरणागति ही भक्ति लाभ का श्रेष्ठ उपाय आदि विषयों पर विस्तार से विवेचना हुई है, इस अध्याय में श्रेष्ठ विद्या और उसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन भी बताया गया है। अध्याय के अन्त में भी भगवान् कहते हैं कि मेरी शरणागति से स्त्री, वैश्य, शूद्र और चाण्डाल आदि किसी को भी परमगति की प्राप्ति संभव हो सकती है। 33वें और 34वें श्लोक में पुण्यशाली ब्राह्मण और राजर्षि भक्तजनों की बड़ाई करके शरीर की अनित्यता को स्पष्ट किया है।

3.2.10 विभूति योग

गीता के दसवें अध्याय में 42 श्लोक है। इस अध्याय में प्रधान रूप से ईश्वर की विभूतियों का ही वर्णन है। जहाँ कहीं पर जो कुछ भी विशेषता इन श्लोकों में दिखाई पड़ती है, वह सब उस ईश्वर की ही विभूति है। ऐसा मानने से भगवान् के साथ योग के सम्बन्ध का अनुभव हो जाता है। इसलिए दसवें अध्याय का नाम 'विभूतियोग' है। इस अध्याय में विशेष रूप से भगवान् की विभूतियों का वर्णन किया गया है। ईश्वर की सबसे बड़ी विभूति यह है कि वह विश्वानुगत होकर भी विश्वातीत है। वह निर्गुण होते हुए भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। वह ईश्वर एक होकर भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। वेदों में भी 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता श्यत्यचक्षः स श्रुणोत्यकर्णः' कहा गया है। पुरुष सूक्त में 'सहस्रशीर्षा' पुरुष कहा गया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही भगवान् ने स्वयं ही कहा है कि मेरे स्वरूप को देवता भी नहीं जानते क्योंकि मैं उनका भी आदि कारण हूँ। सभी महर्षिगण, चतुर्दश मनु आदि समस्त भगवान् से ही उत्पन्न होता है। अर्जुन के द्वारा पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान् कहते है कि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है। मैं सभी प्राणियों का आदि मध्य और अन्त हूँ। आदित्यों में मैं विष्णु हूँ, ज्योतिष में मैं सूर्य हूँ, नक्षत्रों में मैं चन्द्र, देवताओं में मैं इन्द्र, रूद्रों में मैं शंकर हूँ और वायु में मैं मरीचि हूँ। इस प्रकार भगवान् ने कृपा करके अर्जुन को निर्देशित किया और सम्पूर्ण जगत्वासियों को स्वयं प्राप्ति का सुगम मार्ग बता दिया। श्रीकृष्ण भगवान् ने बताया कि जो लोग मुझमें चित्त को अर्पण करके भक्ति से मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे पाने में समर्थ होते है। गीता के चालीसवें श्लोक में भगवान् ने अपनी दिव्य विभूतियों के विस्तार को अनन्त बतलाकर इस प्रकरण को समाप्त किया है।

3.2.11 विश्वरूपदर्शन योग

गीता के एकादश अध्याय का नाम 'विश्वरूपदर्शन योग' है। यह अध्याय 55 श्लोक में समाप्त है। अर्जुन ने भगवान् से दिव्यदृष्टि प्राप्त करके भगवान् के जिस विश्वरूप के दर्शन किये थे, उसके वर्णन को पढ़–सुनकर भगवान् के प्रभाव को मान लेने से भगवान् के साथ योग का अनुभव हो जाता है। अतः इस अध्याय का नाम 'विश्वरूपदर्शन योग' है।

इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने कहा है कि भगवान् मैं आपके रूप को देखना चाहता हूँ। इसमें प्रथम श्लोक से लेकर चतुर्थ तक अर्जुन ने भगवान् की और उनके उपदेशों की प्रशंसा करके भगवान् से विश्वरूप के दर्शन कराने के लिए अनुनय–विनय की है। इसके बाद भगवान् ने प्रसन्न होकर अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखलाया। किन्तु स्थूल नेत्रों से भगवान् के स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता था। इन स्थूल नेत्रों से केवल सांसारिक पदार्थ ही देखे जा सकते हैं। इसलिए भगवान् ने अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान किए थे और इन दिव्य चक्षुओं से अर्जुन ने भगवान् के विश्वरूप का दर्शन प्राप्त किया। जिस रूप को देखकर मनुष्य परमगति को प्राप्त होते हैं। दसवें श्लोक से तेरहवें श्लोक तक अर्जुन को कैसा रूप दिखाई दिया, इसका वर्णन किया गया है। यह संसार ब्रह्मा का विराट शरीर है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी कहा गया है कि – सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्...। इस सूक्त से भी पता चलता है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड उन्हीं का विराट रूप है। इस कारण से वह विश्वरूप है। वेदान्तदर्शन में भी कहा है कि ऐसे विराट रूप भगवान् के दर्शन हो जाने पर –

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। **वेदान्तदर्शन**

ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाता है। श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को जिस दिव्य रूप का दर्शन कराया था वह यथार्थ में बहुत ही अद्भुत, अनिर्वचनीय और अभूतपूर्व था। यह विश्वरूप पूर्ण, सर्वव्यापी आदि मध्य अन्त से रहित तथा ज्योतिर्मय है। फिर सम्पूर्ण विश्व के जन्म और स्थिति – लय भी उन्हीं में ही हो रहें हैं। भगवान् ने इस विश्वरूप को देखाकर अर्जुन को आश्वासन दिया कि ''जिस विश्वरूप का तुमने दर्शन किया है वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।'' मेरा यह रूप एक निष्ठभक्ति के बिना कोई भी नहीं देख सकता। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। इसलिए मेरे इस विश्वरूप का दर्शन तुम्हें हो सका है। श्रीकृष्ण ने कहा ''मैं ही तुम्हारे लिए परमगति हूँ और समस्त कार्यों का कर्ता मैं ही हूँ और सारे कर्म मेरे ही हैं, यदि ऐसा समझकर तुम अनासक्त भाव से युद्धादि समस्त कर्म करते रहो'' यही श्रीकृष्ण भगवान् का उपदेश है। यदि कुछ प्राप्त करना अभीष्ट हो तो मांगना भी अति आवश्यक होता है। जब तक अर्जुन ने पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के पास जाकर 'द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।', ऐसा प्रार्थना नहीं की थी जतब तक भगवान् ने अपना अव्यय आत्मस्वरूप प्रकट नहीं किया था।

3.2.12 भक्ति योग

भगवद्गीता के द्वादश अध्याय में बीस श्लोक है। यह अध्याय भक्ति के साधन के पथ निर्देश के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में अनेक प्रकार के साधनों भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, राजयोग सहित भगवद्भक्ति का वर्णन करके भक्तों के लक्षण बतलाए गऐ है और इस अध्याय का उपक्रम तथा उपसंहार भी भगवद्भक्ति में ही हुआ है। केवल तीसरे, चौथे और पाँचवें – इन तीन श्लोकों में ज्ञान के साधन का

वर्णन हुआ है, परन्तु वह भी भक्ति ओर ज्ञान की परस्पर तुलना करके भक्ति को श्रेष्ठ बतलाने के लिए ही है। इसलिए इस अध्याय का नाम 'भक्तियोग' रखा गया है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन का प्रश्न है कि सगुण–साकार, निर्गुण–निराकार के उपासकों में कौन–सा सहज या श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यद्यपि दोनों ही मार्गों का उद्देश्य एक ही है तो भी सगुण ब्रह्म उपासना या भक्ति का मार्ग श्रेष्ठ है। इस भक्तिमार्ग के भी अनेक उपाय है। उनमें भी भक्ति से युक्तं निष्काम कर्म ही श्रेष्ठ होते हैं। जो मनुष्य भक्ति के मार्ग का सहारा लेकर, इन्द्रियों को संयमित करते हुए तथा सर्वत्र समत्व बुद्धि युक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मभाव देखता है, वही परमात्मा को प्राप्त करते हैं। इस अध्याय में विशेष रूप से भक्तिमार्ग का ही सहारा लेकर ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया गया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि हे अर्जुन। सब कर्मों को मुझमें अर्पण करके अनन्य भाव से एक मेरा ही चिन्तन करो और ऐसा करने पर मैं स्वयं भक्तों का उद्धार करता हूँ। इस अध्याय में श्लोक 13 से 19 तक भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय ज्ञानी महात्मा भक्तों के लक्षण बतलाये है और बीसवें श्लोक में उन ज्ञानी महात्मा भक्तों के लक्षणों को आदर्श मानकर श्रद्धापूर्वक वैसा ही साधन करने वाले भक्तों को अत्यन्त प्रिय बतलाया है।

3.2.13 क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग

गीता के त्रयोदश अध्याय का क्षेत्रक्षेत्रविभागयोग है जो कि 35 श्लोकों में वर्णित है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर और आत्मा दोनों बिल्कुल ही अलग है। अज्ञानता के कारण दोनों में एकता दिखाई पड़ती है। क्षेत्र अर्थात् शरीर जड़, विकारी, नाश्वान तथा क्षणिक है। वहीं क्षेत्रज्ञ इससे विपरित चेतन, अविकारी, निर्विकारी, नित्य तथा अविनाशी है। इस अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों के स्वरूप का भेद वर्णन किया गया है। इसलिए इस अध्याय का नाम क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग रखा गया है। इसके अन्तिम श्लोक के विषय में आचार्य शंकर ने लिखा है कि इस श्लोक से अध्याय का सार और मर्म का पता चलता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर और आत्मा के भेद दर्शन से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। देह और आत्मा को एक समझना ही समस्त बन्धनों का कारण है और इसका अलग–अलग समझना ही आत्मज्ञान है। ''जब तक देह बुद्धि है, तभी तक सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु तथा रोग–शोक है ये सब देह को ही होता है, आत्मा को नहीं। 'आत्मज्ञान' की प्राप्ति होने के बाद सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु आदि स्वप्न की तरह मिथ्या प्रतीत होते हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का यह भेदज्ञान ही 'यथार्थज्ञान' है। वहीं परमात्मा का ज्ञान ब्रह्मज्ञान है। योग मार्ग के अवलम्बन से ध्यान, धारण और समाधि और अनात्मा के विचार से ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

3.2.14 गुणत्रयविभाग योग

गीता के चतुर्दश अध्याय कुल 27 श्लोक में वर्णित है। इस अध्याय में प्रकृति के त्रिगुण सत्व, रजस, तमस के स्वरूप और उनके कार्य कारण और शक्ति का वर्णन किया है। सांख्य में भी ''गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः'' कहा गया है। जीवात्मा को बन्धन में बाँधने और अज्ञान से उस आत्मा को ढकने का मुख्य कार्य त्रिगुण ही करते हैं। इन त्रिगुणों से जब मनुष्य छूट जाता है तब वह परमपद को प्राप्त कर लेता है। सत्व, रजस, तमस इन तीन गुण और त्रिगुणों से अतीत त्रिगुणातीत अवस्था ही इस

अध्याय में विशेष रूप से वर्णित हुए है। इसलिए इस अध्याय का नाम 'गुणत्रयविभाग योग' है।

इन तीनों गुणों से अतीत होकर ईश्वर को प्राप्त करने वाले मनुष्य का क्या लक्षण है ? इन्हीं त्रिगुणों से सम्बन्धित बातों का विवेचन किया गया है। श्रीकृष्ण ने कहा है कि ''मेरी एक निष्ठभाव से भक्तियोग के द्वारा त्रिगुणातीत होकर सेवा करने से ही ब्रह्मभाव की प्राप्ति होती हैं क्योंकि मैं ही एक ब्रह्म की प्रतिष्ठा हूँ।'' श्रीकृष्ण कहते हैं कि पराभक्ति और ब्रह्मभाव एक ही होता है क्योंकि दोनों से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। यह सम्पूर्ण दिखाई देने वाला और दिखाई नहीं देने वाला ब्रह्माण्ड प्रकृति का ही परिणाम हैं। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ईश्वर को प्राणियों का पिता और प्रकृति को माता कहा गया है। 5वें श्लोक से 18वें श्लोक तक सत्व, रजस और तमस तीनों गुणों का क्रम से बताया गया है। जो गुण जिस मनुष्य में ज्यादा मात्रा में होता है उसी के अनुरूप ही उसका स्वरूप निर्धारित होता है। सत्वगुण श्वेत रंग का होता है। सत्वगुण सुखात्मक और ज्ञानवर्धक होता है। तृष्णा और आसक्ति को पैदा करने वाला रजोगुण है। यह रागात्मक होता है। इसकी बुद्धि से लोभ, काम प्रवृत्ति, विषय–वासना आदि उत्पन्न होती है। यह लाल रंग का होता है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है। तमोगुण प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा देहधारियों को बांधता है। तमोगुण की वृद्धि होने पर विवेक का नाश होता है, उद्यम का अभाव तथा बुद्धि का विपर्यय होता है। इसका रंग काला होता है। जिस व्यक्ति में तमोगुण ज्यादा होता है। वह तामसिक प्रवृति का मनुष्य कहलाता है। तीनों गुणों के एक होने पर जो गुण – एक दूसरे को दबाकर प्रबल हो जाता है उसी गुण की प्रबलता मानी जाती है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन को निस्त्रैगुण्य होने का आदेश देकर नित्य सत्वस्थ होने के लिए कहते हैं। इसका आशय यह है कि तीनों गुणों का समाहार होने से ही विशुद्ध सत्ता का उदय होता है।

इस अध्याय के अन्त में श्रीकृष्ण भगवान् ने त्रिगुणातीत अवस्था के जो लक्षण बताये हैं वह अति दुर्लभ है। त्रिगुणातीत होना या मायातीत होना या ब्रह्मभाव प्राप्ति सब एक ही है। इस प्रकार स्थित प्रज्ञ और त्रिगुणातीत अवस्था एक ही है। इसके पश्चात् अन्तिम सत्ताइसवें श्लोक में ब्रह्म, अमृत, अव्यय आदि भगवान् के स्वरूप होने से अपने को इन सबकी प्रतिष्ठा बतलाकर अध्याय का उपसंहार करते हैं।

3.2.15 पुरुषोत्तम योग

गीता का पन्द्रहवाँ अध्याय 20 श्लोकों में वर्णित है। इस अध्याय का नाम 'पुरुषोत्तम योग' है। इस अध्याय में सम्पूर्ण गीता शास्त्र का भाव व्यक्त किया है। सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता, सर्वशक्तिमान, सबको नियत्रित करने वाला, सर्वव्यापी, अन्तर्यामी, परमदयालु, शरण लेने योग्य, सगुण परमेश्वर परम पुरुषोत्तम ईश्र के गुण प्रभाव और स्वरूप का वर्णन किया गया है, इसी अध्याय में क्षर पुरुष (क्षेत्र) अक्षर पुरुष (क्षेत्रज्ञ) और पुरुषोत्तम तीनों का वर्णन किया गया है। 'क्षर' और 'अक्षर' से भगवान् किस प्रकार श्रेष्ठ हैं ? और कैसे सबसे उत्तम हैं ? पुरुषोत्तम कहे जाते हैं ? पुरुषोत्तम कहने के पीछे क्या माहात्म्य है ? इन सबका उत्तर इसी अध्याय में विस्तृत रूप से मिलता है और इतना ही नहीं समस्त वेदों का अर्थ भी इस अध्याय में संक्षेप में बताया गया है। ''जो उन्हें जानता है, वहीं वेदज्ञ है'',। भगवान् ने स्वयं कहा है – मैं क्षर से परे और अक्षर (कूटस्थ) से भी उत्तम हूँ। इसी कारण वेद में तथा इस लोक में मैं पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। इस पुरुषोत्तम भगवान को जानने से ही मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

उसको यह ज्ञान हो जाता है कि वह सगुण और निर्गुण भी है, निराकार, साकार भी है। जब भक्तों को कष्ट होता है तब भगवान् अवतार रूप में अवतरित होते हैं। आगे यह भी कहा गया है कि यह पुरुषोत्तम तत्व अत्यन्त गोपनीय है और बिना ईश्वर की कृपा के कोई भी इसे समझ नहीं सकता है।

आगे भगवान् कहते हैं कि जीव मेरा ही सनातन अंश है। हर मनुष्य कर्मों के फल के अनुसार ही सत् या असत् योनियों में जन्म लेकर सुख–दुखादि को भोगता है। जो ब्रह्म को जानता है उसे यह ज्ञान होता है कि ब्रह्म त्रिगुण से परे है और इन त्रिगुणों से निर्लिप्त है। इस पुरुषोत्तम को श्रुतियाँ भी परम ब्रह्म, परम पुरुष और पूर्व भगवान् मानती है। इनके दर्शन से ही मनुष्य चिरमुक्त हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् में भी लिखा है –

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। मुण्डकोपनिषद्

अर्थात् आत्मा स्वरूप भगवान् का दर्शन करते ही आत्मज्ञानी व्यक्ति की हृदय की ग्रन्थि छिन्न–भिन्न हो जाती है और समस्त संदेह दूर हो जाते हैं और जन्म–जन्मान्तर के समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है। इस पुरुषोत्तम के सम्बन्ध में ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का मंत्र है –

''सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।'' पुरुषसूक्त मन्त्र 1

श्रीमद्भगवत् में ही इन्हीं पुरुषोत्तम की उपासना की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कहा गया है –

वसुदेव परा वेदा, वसुदेव परा मुखाः।
वसुदेव परा योगा, वसुदेव पर क्रियाः।।
वसुदेव परं ज्ञानं, वसुदेव परं तपः।
वसुदेव परो धर्मो वासुदेव परा गतिः।। श्रीमद्भागवत पुराण

इस प्रकार वसुदेव ही मनुष्यों की परमगति है और यही समस्त वेदों का एक मात्र प्रतिपाद्य विषय है।

3.2.16 ''दैवासुरसम्पद्विभाग योग''

गीता के षोडश अध्याय में 24 श्लोक वर्णित है। इस अध्याय में दैव तथा आसुरी सम्पत्तियों का विभाग किया गया है। इसी कारण इस अध्याय का नाम ''दैवासुरसम्पद्– विभागयोग'' है। क्योंकि इस अध्याय में जो दोनों सम्पत्तियों का वर्णन हुआ है, वह परस्पर एक–दूसरे से बिल्कुल अलग है अर्थात् देवी–सम्पत्ति कल्याण करने वाली है आसुरी सम्पत्ति बांधने वाली तथा नीच योनियों और नरकों में ले जाने वाली है, जो साधक इन दोनों विभागों को ठीक रीति से जान लेगा, वह आसुरी सम्पत्ति का सर्वथा त्याग कर देगा और आसुरी सम्पत्ति स्वतः प्रकट हो जाएगी। दैवी सम्पत्ति प्रकट होते ही एकमात्र परमात्मा से सम्बन्ध रह जाएगा।

श्री भगवान् ने दैवीय सम्पत्ति के अन्तर्गत 26 सात्विक गुणों का वर्णन किया है जैसे – चित्रशुद्धि, सत्य, अक्रोध, आत्मज्ञान में निष्ठा, त्याग शान्ति, लज्जा, चंचलता का अभाव,

जीवों पर दया, क्षमा, धैर्य, शौच, अहंकार, अहिंसा, सत्यता आदि दैवी सम्पदाएँ है। जो मनुष्य पूर्व जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप दैवी सम्पदा के अधिकारी पात्र होकर जन्में है वे ही इन 26 सात्विक गुणों के अधिकारी होते हैं। जो मनुष्य दैवी सम्पत्ति से युक्त होते हैं वही मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं। आसुरी सम्पत्तियाँ दर्प, दम्भ, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता, अज्ञान आदि हैं जो मनुष्य इन आसुरी सम्पत्ति को लेकर जन्म लेते हैं वे सदैव दुःख को भोगते रहते हैं। ये मनुष्य दुर्गुणी और दुराचारी होते हैं। उनके लिए संसार ही बन्धन का कारण है। असुर प्रकृति वाले मनुष्य पाप–पुण्य, अर्ध–अधर्म तथा कामोपभोग को ही जीवन का परम पुरुषार्थ समझते है और प्राणियों का अनिष्ट करते है। इस प्रकार असुर प्रकृति के मनुष्य अधर्म का आचरण करके अधोगति को प्राप्त करते हैं और उनकी मुक्ति का कोई उपाय नहीं करता है।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने मानों अर्जुन को लक्ष्य करके सम्पूर्ण सृष्टि को यह बता रहे हैं कि काम, क्रोध और लोभ ये तीनों ही आसुरी स्वभाव का मूल कारण है। ये सभी अनर्थों का मूल द्वार है। इसलिए काम–क्रोध और लोभ इन तीनों का परित्याग करके श्रेय मार्ग को ही अपनाना चाहिए और शास्त्र में बताए कर्त्तव्यों को करके अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए।

3.2.17 श्रद्धात्रयविभाग योग

गीता के सप्तदश अध्याय में 28 श्लोकों है। अर्जुन के प्रश्न करने पर श्री भगवान् ने यहाँ विविध प्रकार की श्रद्धा का विशेष रूप से वर्णन किया है। इस अध्याय में श्रद्धा के तीन विभाग किये गये हैं – सात्विकी श्रद्धा, राजसी श्रद्धा और तामसी श्रद्धा। इस विभाग को जो ठीक–ठीक जान लेगा, वह सात्विकी श्रद्धा का ग्रहण और राजसी–तामसी श्रद्धा का त्याग कर देगा। राजसी और तामसी श्रद्धा का त्याग करते ही सात्विकी श्रद्धा से भगवान् के साथ स्वतः सिद्ध नित्य–सम्बन्ध का अनुभव हो जाएगा। इसलिए इस अध्याय का नाम श्रद्धात्रय–विभागयोग रखा गया है। इस अध्याय में त्रिविध श्रद्धा के अतिरिक्त त्रिविध आहार, त्रिविध तप, त्रिविध यज्ञ, त्रिविध दान आदि में विशेष रूप से बतलाया गया है। इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने श्री कृष्ण से श्रद्धायुक्त पुरुषों की निष्ठा पूछी है। उसके उत्तर में भगवान् ने तीन प्रकार की श्रद्धा को बताते हुए श्रद्धा के अनुसार ही निष्ठा बतलायी हैं। फिर पूजा, यज्ञ, तप आदि में श्रद्धा का सम्बन्ध बतलाते हुए इसके अन्तिम श्लोक में श्रद्धारहित पुरुषों के कर्मों को असत् बतालाया गया है। सत्व, रजस, तमस के भेद से मनुष्य की त्रिविध प्रकृति या अन्तःकरण वृत्ति उत्पन्न होती है। सात्विक श्रद्धा से युक्त मनुष्य देवताओं की पूजा करते हैं। राजसिक प्रकृति के मनुष्य कामना युक्त चित्त से यज्ञ, राक्षस आदि की पूजा करते हैं। फिर तामसिक मनुष्य रोग मुक्ति आदि की इच्छा से भूत–प्रेत आदि की उपासना करते है। कर्मों की त्रिविध स्थितियों का वर्णन भी शास्त्रों में मिलता है –

1. प्रारब्ध कर्म – जिसका भोग चल रहा है।
2. क्रियमाण कर्म – जो भोगकाल में किया जा रहा है।
3. संचित कर्म – जो अभी फल देने में प्रवृत्त नहीं हुआ है।

प्रत्येक जीवन को इन तीनों कर्मों का क्षय करके ही करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने–अपने प्रारब्ध कर्मों के भोग के लिए जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार ईश्वर केवल मनुष्य के कर्मफल भोग की व्यवस्था कर देते है जिस कारण वे अपने–अपने कर्मों का फल भोग करके मुक्ति के मार्ग में आगे बढ़ सके।

3.2.18 मोक्षसंन्यास योग

गीता का अष्टादश अध्याय 78 श्लोकों में रचित है। यह गीता का अन्तिम तथा महत्वपूर्ण अध्याय है। सम्पूर्ण गीता में श्लोकों की संख्या की दृष्टि से यह अध्याय सबसे बड़ा है। इस अध्याय के 73वें श्लोक तक श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद है तथा बाकी पाँच श्लोक संजय द्वारा कहे गए हैं। इस प्रकार आलोचित विषय वस्तु की दृष्टि से भी यह अध्याय श्रेष्ठ है। इसमें समस्त गीता शास्त्र की आलोचना का उपसंहार करके मानव जीवन का परम आदर्श और मोक्ष कैसे हो सकता है ? इसका वर्णन किया गया है। जिसमें मोक्ष का भी संन्यास अर्थात् त्याग हो जाता है, ऐसी भगवद् भक्ति का वर्णन मुख्य होने के कारण इस अध्याय का नाम मोक्ष संन्यास योग रखा गया है। अर्जुन संन्यास और त्याग के तत्व को पृथक–पृथक जानना चाहते थे। इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं कि काम्य कर्म का त्याग ही संन्यास है और सारे कर्मों के फल मात्र का त्याग ही यथार्थ संन्यासी है। कर्मफल का त्याग करके अपने स्वधर्म का अनुष्ठान करना ही मुख्य विषय है। भगवान् अपना अन्तिम उपदेश देते हुए कहते हैं कि –

''मन से अपने समस्त धर्म–कर्म मुझे सौंप कर हमेशा मुझमें अपना मन रखो और अपने अधिकार के अनुसार स्वधर्म का पालन करो, तुम उसी से मेरी प्रसन्नता को पाकर मुक्त हो जाओगे। क्योंकि ईश्वर की कृपा के बिना मनुष्य माया से मुक्त हो ही नहीं सकता। श्री भगवान् अर्जुन को गीता का गुह्तम उपदेश देते हुए कहते हैं – तू एकमात्र मेरा भक्त हो जा, अपना मन मेरे में लगा लो, एकमात्र मेरी ही भक्ति, पूजा करो, मुझे ही नमस्कार करो कि ऐसा करने से तुम मुझे ही प्राप्त हो जाओगे। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ। सब धर्मों का परित्याग करके तू केवल मेरी शरण में आ जा, मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से, बन्धनों से चिरकाल के लिए मुक्त कर दूंगा।''

श्रीकृष्ण जी ने एक छोटी सी बात से सारे उपदेशों का उपसंहार कर दिया –

''अहं त्व सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'' श्लोक 66

इस प्रकार भगवान् की करूणामय मूर्ति को देखकर अर्जुन का संदेह दूर हो गया है और वह विनम्रता और कृतज्ञता के साथ कहता है कि हे भगवान् –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। श्लोक 73

आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति प्राप्त हो गई है। मैं सन्देह रहित होकर अपनी आज्ञा का पालन करूंगा। ब्रह्मज्ञान के बाद जो अवस्था प्राप्त होती है वह अवस्था अर्जुन को सहज ही प्राप्त हो जाती है।

3.3 सारांश

गीता के अष्टादश अध्यायों में सर्वप्रथम अर्जुन विषाद योग है जिसमें अर्जुन को मोह पैदा हो जाता है और वह युद्ध करने के लिए मना कर देता है। तब श्रीकृष्ण अर्जुन के मोह को दूर करने के लिए आत्मा की अमरता, निष्काम कर्मयोग को बताते हुए कहते हैं कि निष्काम कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों के संयोग होने पर परमलक्ष्य स्थितप्रज्ञ एवं आत्मस्वरूप साक्षात्कार को प्राप्त होता है। इसी को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। आगे भगवान ने कर्त्तव्य कर्म करने की श्रेष्ठ विधि बताई कि विवेकपूर्ण सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके तथा निष्काम, ममता रहित होकर, सन्ताप रहित होकर शास्त्रों में बताए

कर्त्तव्य कर्म को करना चाहिए। आगे बताया की कर्म, योग, भक्ति और ज्ञान अलग–अलग न होकर बल्कि एक–दूसरे के सहायक है। द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ उत्तम है। आगे कर्म संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग की श्रेष्ठता बताते हुए भगवान् कहते हैं कि जो भक्तयोगी सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग करके कर्म करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता और जो कर्मयोगी है वह आसक्ति का त्याग करके केवल इन्द्रियाँ, शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही कर्म करते हैं। जो व्यक्ति कर्मफल के बारे में न सोचकर केवल अपना कर्त्तव्यकर्म करता है वहीं संन्यासी तथा योगी है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है तथा स्वयं ही अपना शत्रु भी है। भगवान् ने 17 विभूतियों के रूप में कारणवश से अपनी व्यापकता बताई है। इसमें भगवान् के विमुख और सम्मुख होने का वर्णन है। जो जड़ता से विमुख होकर भगवान् के सम्मुख हो जाते हैं तो वे सगुण– निराकार, निर्गुण निराकार और सगुण साकार ऐसे भगवान के समग्ररूप को जानकर अन्त में भगवान् को ही प्राप्त कर जाते है। इन तीनों स्वरूपों में से किसी भी स्वरूप का चिन्तन करने से परमात्मा के साथ योग हो जाता है। अन्तिम समय में जो भगवान् को याद करता है वह उस ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। ईश्वर की सबसे बड़ी विभूति यह है कि वह विश्वानुगत होकर भी विश्वातीत है। निर्गुण रूप होते हुए भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है। अर्जुन ने भगवान् से दिव्यदृष्टि प्राप्त करके भगवान् के विश्वरूप के दर्शन किए थे। भगवान् ने बताया कि निर्गुण और सगुण उपासकों में से सगुण उपासक श्रेष्ठ है, और उनमें से भी निष्काम कर्मयोगी ही श्रेष्ठ होते हैं। जो भक्त इन्द्रियों को संयमित करते हुए तथा सर्वत्र समत्व बुद्धि युक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मभाव देखता है, वही परमात्मा को प्राप्त करते है। देह और आत्मा को एक समझना ही समस्त बन्धनों का कारण है तथा इन्हें अलग–अलग समझना ही आत्म ज्ञान है। श्रीकृष्ण के द्वारा इसमें सत्व, रजस और तमस इन तीनों गुणों के बारे में विस्तार से बताया गया है। भगवान् को पुरुषोत्तम भी कहा गया है। दैवीय सम्पत्ति कल्याण करने वाली होती है तथा आसुरी सम्पत्ति बन्धन में बांधने वाली होती है फिर त्रिविध श्रद्धा, त्रिविध आहार, त्रिविध तप, त्रिविध यज्ञ तथा त्रिविध दान के विषय में बतलाया है और अन्त में मोक्ष का उपदेश देते हुए अर्जुन से कहते हैं कि तू एकमात्र मेरा भजन कर मुझ में अपना मन लगा लो, मुझे ही नमस्कार करके मेरी ही भक्ति पूजा करो, तो निश्चय ही तुम मुझे प्राप्त कर लोगे।

बोध प्रश्न

नीच दिये गये कथनों में से सत्य (√) तथा असत्य (×) कथन का चयन कीजिए।

1. सम्पूर्ण भगवद्गीता अट्ठारह अध्यायों में विभक्त है ( )
2. कौरवों के पास सप्त अक्षौहिणी सेना है। ( )
3. द्वितीय अध्याय में 72 श्लोक है। ( )
4. पञ्चम अध्याय का नाम सांख्ययोग है। ( )
5. फल की आसक्ति ही मोक्ष है। ( )
6. विभूतियोग दसवें अध्याय का नाम है। ( )

अभ्यास प्रश्न

1 गीता के अष्टादश अध्यायों के नाम लिखिए ?

2 आत्मा की अमरता के बारे में लिखिए ?

3 दैवी सम्पत्ति व आसुरी सम्पत्ति क्या होती है व उनके नाम लिखिए ?

4 अर्जुन की शोकाकुल अवस्था का मुख्य कारण क्या था ?

5 कर्मयोग क्या है, बताइए ?

6 मोक्ष की अवस्था कैसी होती है ? लिखिए।

7 ''ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते''। श्लोक की व्याख्या कीजिए।

3.4 शब्दावली

संख्ये – युद्ध भूमि में

विमृज्य – एक ओर रखकर

वासांसि – वस्त्रों को

जीर्णानि – पुराने तथा फटे

विहाय – त्याग कर

गृहणाति – ग्रहण करता है

छिन्दन्ति – खण्ड–खण्ड कर सकते हैं

शस्त्राणि – हथियार

दहति – जला सकता है

पावक – अग्नि

मारूतः – वायु

कमफलहेतुर्भूर्मा – कर्मफल का कारण कभी मत होओ

संगोऽस्त्वकर्मणि – कर्म न करने में आसक्त होओ।

संस्पर्शजा – भौतिक इन्द्रियों के स्पर्श से उत्पन्न

आद्यन्तवन्तः – प्रारम्भ, अन्त वाले

स्थानमुपैति – धाम को प्राप्त करता है

क्षीयन्ते – दूर हो गए सारे संशय

स्मृतिलब्धा – स्मरण शक्ति पुनः प्राप्त हुई

त्वत्प्रसादान्मयाच्युत – आपकी कृपा से मेरे द्वारा, हे अच्युत कृष्ण।

3.5 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बोध प्रश्न

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य

5. असत्य 6. सत्य

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

3.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1	श्रीमद्भगवतगीता	–	साधक संजीवनी हिन्दी टीका, गीताप्रेस गोरखपुर
2	श्रीमद्भगवद्गीता	–	महात्म्यसहित, गीताप्रेस गोरखपुर
3	श्रीमद्भगवद्गीता	–	यथारूप – स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
4	सांख्यकारिका	–	ईश्वर कृष्ण व्याख्या– राकेश शास्त्री
5	वेदान्तसार	–	सदानन्द – साहित्य भण्डार, मेरठ

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 4 गीता का सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व

इकाई की रूप रेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 गीता का सामाजिक महत्त्व

4.3 गीता का आर्थिक महत्त्व

4.4 गीता का सांस्कृतिक महत्त्व

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- गीता के सामाजिक महत्त्व को जान पाऐंगे।
- गीता के महत्त्व का ज्ञान हो जायेगा।
- गीता का धार्मिक महत्त्व से परिचित हो पाएगें।
- धर्म के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- गीता का सांस्कृतिक महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।
- 'आहार कैसा होना चाहिए' से परिचित हो पाएंगे।

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने गीता का परिचय प्राप्त करते हुए उसके अभिप्राय व प्रयोजन को जाना। आपने गीता के अट्ठारह अध्यायों का भी संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। आपने जाना कि किस अध्याय में कितने श्लोक व किन–किन विषयों का वर्णन उन अध्यायों में किया गया है। इन अट्ठारह अध्यायों में वर्णित विषय–वस्तु ज्ञानयोग निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग, ईश्वर, जीव, आत्मतत्व स्थितप्रज्ञ व मोक्ष के स्वरूप ज्ञान प्राप्त किया। इस अध्याय में आप गीता का क्या सामाजिक महत्त्व है ? क्या समाज में इसका योगदान है ? क्या धार्मिक महत्त्व है ? व क्या इसका सांस्कृतिक महत्त्व है ? इसका ही विवरण हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे व लाभान्वित होंगे।

गीता जीवन सम्बन्धी शास्त्र है। जीवन चिन्ताओं और तनावों से मुक्त करके आनन्द से परिपूर्ण कर देना ही गीता का मुख्य कार्य है। क्रियाशीलता ही जीवन का दूसरा नाम है। मनुष्य का पूरा जीवन विविध प्रकार के कर्म करते हुए बीतता है। कहा जाता है कि गीता को सुगीता कर लेने पर किसी अन्य शास्त्र को पढ़ने की आवश्यकता नहीं

रहती है। गीता का मानव जीवन में बहुत महत्त्व है। इसमें 18 अध्याय है तथा 700 श्लोक है। इन श्लोकों में हर समस्या का समाधान मिल जाता है। इस प्रकार इस इकाई में गीता का सामाजिक व धार्मिक महत्त्व का वर्णन किया जाएगा।

4.2 गीता का सामाजिक महत्त्व

प्रत्येक मनुष्य समाज से जुड़ा हुआ है। समाज तभी उन्नति कर सकता है जब उसमें रहने वाला मनुष्य सत्य, अहिंसा सच्चरित्रवान युक्त हो। आज प्रत्येक मनुष्यों में तनाव चिंता भय आदि भरे हुए है। इन सबसे मुक्ति पाने के लिए एकमात्र उपाय है गीता का अध्ययन। इसके अध्ययन से ही व्यक्ति अपनी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए अपने उच्च लक्ष्य को प्राप्त कर सकता हैं, इसका महत्त्व निम्नलिखित है –

1. सुशासन वैयक्तिक लक्ष्य और सामाजिक व्यवस्था –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।। 3/21

अर्थात् महापुरुष जो आचरण करता है सामान्य व्यक्ति भी उसी का अनुसरण करते है। वह अपने अनुसरणीय कार्यों से जो आदर्श प्रस्तुत करता है सम्पूर्ण विश्व उसी का अनुसरण करता है।

सामान्य मनुष्य को सदैव एक ऐसे नेता की आवश्यकता होती है जो व्यवहारिक आचरण द्वारा जनता को शिक्षा दे सके। यदि नेता स्वयं धूम्रपान करता है तो वह जनता से धूम्रपान बन्द करने की शिक्षा कभी नहीं दे सकता। शिक्षक को चाहिए कि सामान्य जन को शिक्षा देने के लिए स्वयं शास्त्रीय सिद्धान्तों का पालन करें। चाहे राजा हो या राज्य के प्रशासनिक अधिकारी, चाहे माता–पिता हो या शिक्षक ये सब अबोध जनता के स्वाभाविक नेता माने जाते हैं। इसलिए इन्हें अपना आचरण श्रेष्ठ बनाना चाहिए।

2. समाज विधायक नीति और उसका उद्देश्य

परित्राणायसाधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।। 4/8

अर्थात् भक्तों का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने तथा धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए मैं हर युग में प्रकट होता हूँ।

इसका अभिप्राय यह है यदि कोई उपद्रवी, मूर्ख तथा अधम व्यक्ति भले ही वे सांसारिक शिक्षा से विभूषित ही क्यों न हो उसे दण्डित किया जाए। भगवान् भी पापी को दण्ड देने के लिए प्रत्येक युग में अवतरित हुए है। ऐसे ही यदि समाज में कोई व्यक्ति पाप अनाचार फैला रहा हो तो उसे भी दण्ड दिया जाता है। सबको सुख–शान्ति से जीने का अधिकार हो जब इन अधिकारों का हनन किया जाता है तो सामाजिक व्यवस्था उसे व्यक्ति को दण्ड देती है।

3. नागरिक जीवन का चरमोत्कर्ष व सामाजिक व्यवस्था में इसका योगदान

भगवद्गीता मनुष्य को शुभ कर्म करने की प्रेरणा देता है व अपना उद्धार करने के लिए भी प्रेरित करता है। नागरिक जीवन का चरम लक्ष्य शुभ कर्म करते हुए

अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाना है। श्रेष्ठ व्यक्ति का अनुसरण समाज करता है व इससे सामाजिक व्यवस्था मजबूत बनती है। गीता में भी कहा गया है कि –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। 6/5

अर्थात् मनुष्य को अपने मन की सहायता से अपना उद्धार करना चाहिए और अपने आपको कभी भी नीचे नहीं गिरने देना चाहिए। क्योंकि मन ही आत्मा का मित्र भी है और शत्रु भी है।

इस जगत् में मनुष्य मन तथा इन्द्रियों में फंसा हुआ है। जो जितना इन्द्रिय विषय के प्रति आकर्षित होता है वह उतना ही इस संसार में फसकर बुरे कर्म करता रहता है। इसलिए जो मनुष्य मन को इन्द्रियों के विषय से हटा लेता है उसका स्वयं का जीवन तो उच्च श्रेणी का बनता है तथा सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ करने में भी उसका योगदान होता है।

4. स्वतंत्र समाज में वैयक्तिक अधिकार

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। अध्याय – 2, श्लोक 47

अर्थात् तुम्हारा कर्म करने का अधिकार है किन्तु कर्मों के फल के तुम अधिकारी नहीं हो। तुम न तो कभी अपने आपको कर्मों के फलों का कारण मानो, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त होओ। तात्पर्य यह है कि स्वतंत्र समाज में व्यक्ति का अधिकार है कि वह कर्म करे। काम को करने में वह स्वतंत्र है कि वह क्या करें व क्या न करें? वह कर्म करने, बोलने, रहने में स्वतंत्र है। मनुष्य सामाजिक दायरे में रहकर अपना कर्म करता है। मनुष्य प्रत्येक प्राणी की अर्थात् अपनी परिवार की, समाज की, मानवता की सर्वोच्च सेवा कर सकता है। यदि मनुष्य के कर्मों से भगवान् प्रसन्न हो जाए तो प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट रहेगा। मनुष्य को समाज में ऐसा आचरण करना चाहिए कि उसे देखकर अन्य भी उनसे प्रेरित हो सके और कभी भी दिखावे के लिए कार्य नहीं करना चाहिए। बिना कर्मफल पर आसक्त हुए प्रत्येक मनुष्य को अपना कार्य करना चाहिए।

5. लालसा व तृष्णा सामाजिक अव्यवस्था का कारण

सामाजिक अव्यवस्था का मुख्य कारण तृष्णा व लालसा है क्योंकि इन्द्रिय विषयों के चिन्तन से भौतिक इच्छाएँ उत्पन्न होती है जब वे इच्छाएं पूरी नहीं होती तो मनुष्य गलत कर्म में लिप्त हो जाता है। फिर समाज में अव्यवस्था फैल जाती है। गीता में भी इसी सन्दर्भ में कहा है

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 2/62

अर्थात् जब इन्द्रियों के विषय का चिन्तन करते हुए मनुष्य की उनमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और आसक्ति से काम उत्पन्न होता है और फिर काम से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से मोह उत्पन्न हो जाता है। मोह से स्मरण शक्ति का नाश हो जाता है। जब स्मरण शक्ति का नाश होता है तो बुद्धि का भी नाश हो

जाता है और बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का पतन हो जाता है फिर उस मनुष्य को कोई नहीं बचा सकता।

इसलिए गीता में कहा है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को उनके विषय से हटा देना चाहिए और भगवान् की तरफ बुद्धि को लगाना चाहिए। विषयों के उपभोग से मनुष्य का पतन निश्चित है तथा भगवान् से बुद्धि लगाने पर मोक्ष निश्चित है और जब मनुष्य पतन की ओर बढ़ता है तब समाज में अव्यवस्था, असहिष्णुता फैल जाती है और यदि लालसा व तृष्णा न हो तो वह समाज व्यवस्थित व बहुत ऊँच हो सकता है। समाज में व्यवस्था बनाने के लिए भगवद्गीता का अध्ययन आवश्यक है।

6. 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त

भगवद्गीता 'वसुधैव कुटुम्बकम' अर्थात् सारी पृथ्वी ही एक परिवार है यही बात सिखाती है। जब मनुष्य सारी पृथ्वी को अपना परिवार मानकर, आचार, विचार, व्यवहार करता है तो वह राग द्वेष, ईर्ष्या से मुक्त होकर कर्म करता है। सबको साथ में लेकर कार्य करता है फिर अपना, पराया, अच्छा–बुरा, छोटा, बड़ा सब भेद समाप्त हो जाते है। यदि समाज के सभी व्यक्ति वसुधैव कुटुम्बकम् को अपना ले तो देश बहुत प्रगति करता है उसके उत्थान उत्कर्ष को कोई नहीं रोक सकता। गीता में भी इसी सन्दर्भ में श्लोक है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। 6/30

अर्थात् जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है। ऐसा व्यक्ति सभी वस्तुओं में भगवान् को ही देखता है क्योंकि प्रत्येक वस्तु ईश्वर की ही शक्ति की अभिव्यक्ति है जो सभी जगह ईश्वर को ही देखता, पाता है वह व्यक्ति कभी पाप कर्मों में लिप्त नहीं होता। हमेशा पुण्य कर्म करता है। वह भी सन्तुष्ट रहता है और दूसरे भी उससे सन्तुष्ट होते हैं। इसलिए सभी व्यक्तियों को अच्छे कर्म करने चाहिए।

7. भारतीय सामाजिक व्यवस्था में ईर्ष्या व द्वेष का कोई स्थान नहीं है

एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था वही है जहाँ प्रेम, विश्वास, सन्तुष्टता हो। उसमें ईर्ष्या व द्वेष नहीं होना चाहिए। जहाँ पर ईर्ष्या, द्वेष आदि जन्म ले लेते है वहाँ पर लड़ाई, मारपीट, चोरी आदि बढ़ जाते है। जो आदर्श समाज के लिए भी अच्छा नहीं है। गीता के एक श्लोक में भी कहा है –

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहे सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।। 5/3

अर्थात् जो पुरुष न तो कर्मफल से घृणा करता है और न कर्मफल की इच्छा करता हैं वही नित्यसंन्यासी है। ऐसा मनुष्य समस्त द्वन्द्वों से रहित होकर भवबन्धन को पार करके पूर्णरूप से मुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार समाज में भी जो जैसा है जैसा काम कर रहा है उसका जो फल प्राप्त हो रहा है उससे घृणा नहीं करनी चाहिए। इस भौतिक जगत् में

छल–कपट से रहित होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। जिसके मन में छल–कपट नहीं रहता वह पूर्ण शान्ति को प्राप्त करता है। केवल समस्त कर्मों के त्याग करने से कोई सुखी नहीं बन सकता। कर्मों को करते हुए कर्मों की आसक्ति को त्यागकर मन से ईश्वर का ध्यान करने से ही सुख शान्ति प्राप्त होती है। ऐसा समाज आदर्श समाज होता है जहाँ सब सुख शान्ति से रहते है।

8. आदर्श जीवन व्यवस्था

गीता हमें आदर्श जीवन व्यवस्था सिखाती है कि कैसे आदर्श जीवन जी सकते हैं। आदर्श जीवन जीने वाले व्यक्ति का सभी अनुकरण करते हैं। आदर्श जीवन कैसा होता है ? इसका उत्तर देते हुए कहा है कि जो व्यक्ति स्वयं से व दूसरों से सन्तुष्ट होता है तथा किसी भी प्रकार के लोभ–मोह, ईर्ष्या, द्वेष में फंसा हुआ नहीं है। जिसे सुख–दुःख की कोई परवाह न हो। लाभ–हानि में एक समान रहे। सब से मिलकर चले, व साथ लेकर चले, सबके अधिकारों की बात कहे। ऐसा व्यक्ति आदर्श व्यक्ति होता है व उसका जीवन आदर्श जीवन है। जब सभी इन आदर्श का पालन करेंगे तभी वह समाज आदर्श समाज कहलाएगा। गीता में भी कहा है –

सुखदुखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि।। 2/38

यहाँ पर भी भगवान् ने अर्जुन को कहा कि तुम सुख–दुःख, हानि या लाभ, विजय या पराजय का विचार किए बिना युद्ध के लिए युद्ध करो तो तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा। इसी प्रकार यदि आज मनुष्य सुख–दुःख, लाभ या हानि और जय–पराजय का विचार किए बिना कर्म करें तो मनुष्य को पाप नहीं लगेगा और व्यक्ति आदर्श जीवन जी सकता है।

4.3 गीता का आर्थिक महत्त्व

भगवद्गीता एक धार्मिक ग्रन्थ है। धर्म की दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थ कहे गए है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म सर्वप्रथम है क्योंकि धर्म से ही अर्थ और काम प्राप्त होते है। इसलिए धर्म को भारतीय संस्कृति का मूल तत्व माना जा सकता है। केवल महाभारत में ही नहीं बल्कि याज्ञवल्क्य स्मृति, विष्णुस्मृति और मनुस्मृति इत्यादि स्मृतियों में भी धर्म को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया है। मनुस्मृति में धर्म के विषय में कहा गया है।

धर्म एक हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो वधोऽवधीत।। 8/15

अर्थात् जो अपने धर्म को छोड़ देता है, धर्म उसका विनाश कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता है, तो धर्म भी उसकी रक्षा करता है इसलिए धर्म का पालन करना आवश्यक बतलाया है।

धर्म परिवर्तन एक अनावश्यक है व अवनति का मार्ग है –

इस सन्दर्भ में भगवद्गीता में एक श्लोक भी है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। 3.35

अर्थात् अच्छी तरह आचरण में लाये हुए दूसरों के धर्म से गुणों की कमी वाला अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी है और दूसरों का धर्म भयभीत करने वाला है।

गीता में भी कहा गया है कि अन्य धर्म यदि बाहर से देखने में गुणसम्पन्न है, उसका पालन करना भी आसान हो, उसमें धन, वैभव, मान–बडाई सभी सुख–सुविधाएं आदि प्राप्त होती हों और पूरा जीवन सुख–आराम से रह सकते हो तो भी दूसरे धर्म का पालन का परिणाम भय तथा दुःख देने वाला होता है। इसके विपरित यदि अपने धर्म में कोई धन–वैभव, मान–सम्मान आदि कुछ भी नहीं मिलता हो और जीवन भर कष्ट सहना पड़े तो भी अपने धर्म का निष्काम भाव से पालन करना ही कल्याणकारी होता है। इसलिए मनुष्य को किसी भी स्थिति में अपनी धर्म का पालन करना चाहिए। वर्ण, आश्रम आदि के अनुसार अपने–अपने कर्त्तव्य का निःस्वार्थभाव से पालन करना ही स्वधर्म है। जिसे धर्म कहा है उसी का नाम कर्त्तव्य है। स्वधर्म का पालन करना अथवा कर्त्तव्य का पालन करना एक ही बात है।

धर्म का पालन करना कल्याण करने वाला होता है :–

गीता में कहा गया है कि व्यक्ति का अपना धर्म कल्याण करने वाला होता है। यदि अपने धर्म का पालन करते हुए मनुष्य की यदि मृत्यु भी हो जाए तो भी वह कल्याणकारी होता है। वह इस लोक में प्रशंसा और परलोक में कल्याण देने वाला होता है। जो कर्त्तव्य का ठीक पालन करता है उसका चित्त प्रसन्न रहता है और प्रसन्नता कल्याणकारी होती है।

गीता के अट्ठारहवें अध्याय में भगवान् अर्जुन को धर्म का महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं कि –

श्रेयान्स्वधर्मे विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।। श्लोक 47

अर्थात् गुणरहित होने पर भी अपने धर्म का पालन करना श्रेष्ठ है, चाहे दूसरों का धर्म कितना ही अच्छा क्यों न हो स्वभाव से नियमित रूप से स्वधर्म का पालन करते हुए मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं करता है। जैसे कोई अपने को मनुष्य मानता है तो मनुष्यता का पालन करना उसका स्वधर्म है। ऐसे ही कर्मों के अनुसार विद्यार्थी का धर्म पढ़ना है और अध्यापक का धर्म पढ़ाना हो जाएगा। इस प्रकार जिसकी जिस कार्य में नियुक्ति हुई है उस कार्य को अच्छी प्रकार से करना उसका स्वधर्म है और भी कहा गया है कि –

योगस्थ कुरू कर्माणि संङ्ग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग–उच्चते।। 2/48

इसमें भी कहा है कि हे अर्जुन तुम लाभ–हानि, जय–पराजय में समान बुद्धि होकर योगयुक्त होकर कर्म करना चाहिए। इस ही समत्व योग कहते है। यहाँ पर धर्म का अर्थ होता है – कर्त्तव्य। मनुष्य धर्म के नाम पर केवल कर्मकाण्ड पूजा–पाठ, तीर्थ और मन्दिर तक ही सीमित रह जाते हैं, जबकि हमारे ग्रन्थों में कर्त्तव्यों को ही धर्म कहा है। परमात्मा कहते हैं कि हमें कभी मान–सम्मान, यश–अपयश आदि का विचार नहीं करना चाहिए। अपनी बुद्धि को अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य में टिकाकर ही कर्म करना चाहिए।

गीता में यह भी बताया गया है कि हर वर्ण और आश्रम के अपने–अपने धर्म होते हैं। मनुष्य को अपने इन धर्मों में स्थित रहकर ही कर्म करना चाहिए। जैसे भिक्षा यज्ञ, विवाह आदि कराना और उनमें दान–दक्षिणा लेना आदि कर्म ब्राह्मण के लिए तो धर्म है, परन्तु क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लिए अकर्त्तव्य है। क्षत्रियों का धर्म शूरवीरता तेज, धैर्य, प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना और शासन करने का भाव ये सबके सब क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म है। वैश्य का धर्म खेती करना, गायों की रक्षा करना और शुद्ध व्यापार करना है। शूद्र का स्वाभाविक कर्म तीनों वर्णों की सेवा करना है।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। 18/42
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। 18/43
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। 18/44

चारों आश्रमों को भी अपने–अपने धर्म के अनुसार कार्य करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का धर्म है कि वह अपनी इन्द्रियों को वश में करके अध्ययन कार्य सम्पन्न करें। गृहस्थ आश्रम का धर्म है कि मनुष्य को पंच यज्ञों को पूर्ण करते हुए सन्तान उत्पत्ति करनी चाहिए और शिक्षा आदि देना चाहिए।

4.4 गीता का सांस्कृतिक महत्त्व

संस्कृत साहित्य के समादृट ग्रन्थों मे श्रीमद्भगवद्गीता का उच्च स्थान है। यह न केवल धार्मिक दृष्टि से अपितु सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। भगवद्गीता के कारण ही महाभारत का महत्त्व और भी बढ गया है। गीता करोड़ों हिन्दुओं के लिए न केवल आचार–संहिता है अपितु वेद के समान एक धर्मग्रन्थ भी है। अर्थधर्म के सभी भेद–उपभेद गीता की प्रामाणिकता पर बिल्कुल भी सन्देह नहीं करते है। यथार्थ तो यह है कि गीता अर्थधर्म को समन्वित एवं सूत्रबद्ध करने वाली श्रृंखला है। गीता में कर्म की प्रधानता पर बल देते हुए भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि।। 2/47

अर्थात् हे अर्जुन! तेरा कर्म करने में अधिकार है फल में नहीं है। यहाँ अर्जुन के माध्यम से सभी मनुष्यों को बताया गया है कि कर्मों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि कर्म करना ही छोड़ दिया जाए। क्योंकि कुछ न करना भी कर्म है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को आसक्ति से रहित होकर कर्म करना चाहिए।

इस प्रकार गीता एक नहीं अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों के दमन का प्रयास, दैवी सम्पत्ति को ग्रहण करना, जीवन दर्शन की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता, त्रिगुणों का विवेचन चतुवर्ग की सभी समस्याओं का समाधान इसमें है। अतः कहा भी गया है कि –

ध्यायतो विषयान्पुसः संगस्तेषूजायते।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते। 2/62
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/63

इसमें एक ओर निष्काम कर्म का उपदेश है तो दूसरी ओर मोक्ष धर्म का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसमें आसक्ति का त्याग करके लाभ–हानि में समान रहकर योग में स्थित होकर कर्मों को करने से ही समत्व योग कहा गया है।

योगस्थः कुरू कर्मणी संङ्ग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48

इसी प्रकार आचार–संहिता के लिए यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसमें दिखावटीपन का न होना, अपने को श्रेष्ठ न समझना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरू की सेवा, बाहर–भीतर की शुद्धि, मन को वश में न करना आदि का अप्रतिम वर्णन किया है –

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रह।। 7/7

इसी प्रकार ईश्वर के स्वरूप को प्रकट करते हुए बताते है कि –

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।। 13/15
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च। 13/16

अर्थात् वह परमात्मा चराचर सब प्राणियों के बाहर–भीतर परिपूर्ण हैं और वह चर–अचर रूप में भी वहीं है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है जिसे साधारण मनुष्य नहीं जान सकते है वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होने से अत्यन्त समीप है तथा अज्ञानी पुरुषों के लिए वह अत्यन्त दूर है। वह ईश्वर के विभाग रहित एक रूप से आकाश के समान परिपूर्ण होता हुआ भी चराचर सम्पूर्ण प्राणियों में अलग–अलग के सदृश स्थित हुआ सा प्रतीत होता है तथा वह जानने योग्य परमात्मा, विष्णुरूप से प्राणियों को धारण पोषण करने वाला और रूद्र रूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मा रूप से सबको उत्पन्न करने वाला है।

सारे देहधारी जीव भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के अधीन है। ये है – सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। जब शाश्वत जीव प्रकृति के सम्पर्क में आता है तो वह इन गुणों से बंध जाता है और यही गुण अनेक प्रकार के सुख–दुःख के कारण है।

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे दहिनमव्ययम्।। 14/5

इसी प्रकार ईश्वर और जीव के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा कि बुद्धिजीव संसार में बंधा हुआ है। वह ईश्वर मुक्त है परमदाता है।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। 15/2

जीवन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समुचित पथ प्रदर्शन देने की बात कही है। अतः मनुष्यों को भौतिक उलझनों में फंसकर प्रामाणिक गुरू के पास जाना चाहिए। जो उसकी समस्या का समाधान कर सके और कहा भी गया है –

जातस्य हि ध्रवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। 2/27

इसी प्रकार गीता में प्रयुक्त श्लोक केवल दर्शन तथा अध्यात्म के उत्कर्ष को प्रदर्शित करते के लिए ही पर्याप्त नहीं है अपितु मोक्ष पद में सहायक पाठक के हृदय तक पहुँचाने के लिए वे निस्यन्द का कार्य करती है। सबसे अधिक प्रमुखता उदाहरण तक आध्यात्मिकता की है। गीता का निम्न श्लोक इन प्रसंग में देखने योग्य है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी। 2/63
मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी माम् नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। 18/65

इस प्रकार स्पष्ट होता है गीता जैसे शिरोमणि ग्रन्थ में जहाँ शान्ति की चर्चा है अर्जुन का अपने कर्त्तव्य मार्ग से विमुखता है, वहाँ श्री कृष्ण अर्जुन को कर्त्तव्य का बोध कराते हुए कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आत्मा की अमरता, स्थितप्रज्ञ, सामाजिक आदर्श, तीन प्रकार की श्रद्धा, भोजन, यज्ञ, तप, दान, मोक्ष आदि का सहजता से उपदेश दिया है। इसमें एकरूपता समन्वय, व्यवहार में आदर्श, समाज में शान्ति, श्रेय तथा धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है। वस्तुतः उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त होने के कारण गीता को विश्वकोष जैसी उपाधि से विभूषित किया गया। इस ग्रन्थ के विषय में यद्यपि यह सत्य है कि भाषा व शैली में रामायण जैसा परिष्कार नहीं है किन्तु इसमें तरंगिता तरंगिणी के समान नीरस को सरस, अबोध को सुबोध, अज्ञ को विज्ञ, अकुशल को कुशल, अनीतिज्ञ को नीतिज्ञ उसकी समस्याओं का समाधान कर सके। जैसे कहा भी गया है –

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। 2/7

गीता में भी रामायण आदि के समान अत्यन्त प्रभावोत्पादक व प्रवाहमुक्त सभी नीतिपरक सिद्धान्तों का अक्षय भण्डार ऐसे प्राप्त होता है, जिससे जीवन के शाश्वत मूल्यों का यथार्थ दर्शन हो जाता है।

सुखदुःखे समे कृत्वालाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्वाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि।। 2/38

गीता में यह भी बताया है कि कौन–कौन से दिव्यगुण होने चाहिए ? कौन–कौन से अवगुण नहीं होने चाहिए। इन गुणों को अपना कर व्यक्ति समाज में श्रेष्ठ आदर्श स्थापित कर सकता है जिससे दूसरे उनका अनुकरण कर सके। जैसा व्यवहार करेंगे वैसा ही अन्य करेंगे – यथा

अभयं सत्वसंश्रुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवास्थितिः।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तपः आर्जवम्।। 16/1
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।। 2
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं देवीमभिजातस्य भारत।। 3

गीता में भी बताया गया है कि कैसा आहार खाना चाहिए, कैसा नहीं खाना चाहिए। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इसका बहुत महत्त्व हैं जो भोजन रस से भरपूर हो जैसे फल सब्जियों और चिकनाई से युक्त हो दूध, दही, छाछ, घी आदि ये सात्विक भोजन है। इसको खाने से आयु, बल, स्वास्थ्य सुख तथा तृप्ति मिलती है। जबकि तीखे, खट्टे, नमकीन, गरम, चटपटे, सूखे तथा जलन उत्पन्न करने वाला भोजन दुःख, शोक उत्पन्न करता है और खाने से तीन घंटे पूर्व पकाया गया, स्वादहीन, सड़ा हुआ, जूठा, अस्पृश्य वस्तुओं से युक्त भोजन भी रोग–आलस्य आदि विकार उत्पन्न करते है। यथा–

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः।। 17/8
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोककामयप्रदा।। 17/9
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।। 17/10

यह ग्रन्थ अव्यवहारी को व्यवहारपरक पापात्मा को पुण्यात्मा और अन्ततः नर को नारायण बना देता है। यही कारण है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में गीता अपनी महत्ता के कारण सर्वप्रसिद्ध मानी जाती है।

4.5 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि मनुष्य का जीवन कई प्रकार की समस्याओं से घिरा रहता है। गीता वह शास्त्र है जो हमें समाज में रहना सिखाती है। कैसे गीता के उपदेशों को जीवन में धारण करके न केवल अपना व्यक्तिगत स्तर ऊँचा उठा सकते है अपितु समाज कल्याण में भी सहायक बन सकते है। व्यक्तियों से ही समाज बनता हैं जब व्यक्ति अपने में परिवर्तन कर सभी को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के समान देखता है तो समाज से लड़ाई–झगड़ा, मान–सम्मान, अपना–पराया सारे भेद समाप्त होकर केवल कल्याणकारी बात ही देखता है। वह व्यक्ति समाज का उद्धार करने में सक्षम है। गीता को धर्म की दृष्टि से देखे तो भी इसका महत्त्व कम नहीं हैं। यह गीता एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है जो बताती है कि कैसे सुख–दुःख, लाभ–हानि को छोड़कर अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करने से धार्मिक उन्नति बढ़ती है। धीरे–धीरे परमात्मा के समीप पहुँच जाता है। आपने यह भी पढ़ा कि मनुष्य को किसी भी प्रकार से अपने धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए और दूसरे के धर्म को स्वीकार करना श्रेष्ठ नहीं है। अपने धर्म में कितनी दुःख– तकलीफ हो फिर भी उसे छोड़ना श्रेष्ठ नहीं है। आगे कहा कि अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी है। गीता के सांस्कृतिक महत्त्व में कर्मों की प्रधानता पर बल दिया गया है। इसमें बताया कि देवी सम्पत्ति का ग्रहण करना चाहिए और आसुरी गुणों का दमन करना चाहिए। आदर्श जीवन जीने के लिए दया, अहिंसा,

दान, पवित्रता आदि गुणों का ग्रहण करना चाहिए। वास्तविक आहार लेना चाहिए जिससे मनुष्य सुखी रहे। अन्त में मोक्ष प्रदान करने वाली गीता ही पूर्ण शान्ति प्रदान करने वाली है। यही पूर्ण शान्ति मोक्ष कारक है।

बोध प्रश्नों 1

1. सामाजिक अव्यवस्था का मुख्य कारण क्या है ?

.....

.....

.....

.....

.....

2. वसुधैव कुटुम्बकम् का क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

.....

.....

3. मानव जीवन के कितने पुरुषार्थ है ? नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4. 'स्वधर्म निधनं श्रेयः' का क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

.....

.....

5. गुण कितने होते है ? नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6. दिव्यगुण कौन–कौन से गुण होने चाहिए ?

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1. गीता के सामाजिक महत्त्व का वर्णन कीजिए ?
2. गीता के धार्मिक महत्त्व को समझाइए ?
3. गीता का सांस्कृतिक महत्त्व क्या है ?
4. मनुष्य का खान–पान कैसा होना चाहिए ?

4.6 शब्दावली

दीर्घसूत्री – काम को कल पर टालने वाला, थोड़ा काम होते हुए भी काम न करना

उच्छिष्ठम् – अन्यों का झूठन

आपूर्यमाण – भरे हुए

जातस्य – पैदा होने वाले की

अमेध्यम् – अस्पृश्य, स्पर्श न करने योग्य

रूक्ष – शुष्क

दाहिनः – जलाने वाला

प्रदाः – उत्पन्न करने वाले

विवर्धना – बढ़ाते हुए

स्थिरा – सहिष्णु

हृद्या – हृदय को अच्छे लगे वाले

4.7 बोध / अभ्यास प्रश्नों के उत्त

1. तृष्णा व लालसा सामाजिक अव्यवस्था का मुख्य कारण है।
2. सारी पृथ्वी ही अपना परिवार है।
3. चार – 1. धर्म, 2. अर्थ, 3. काम, 4. मोक्ष।
4. अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है।
5. तीन गुण होते हैं – 1. सत्व, 2. रजस, 3. तमस।
6. निर्भयता, आत्मशुद्धि, आध्यात्मिक ज्ञान का अनुशीलन, दान, आत्मसंयम, यज्ञपरायणता, वेदाध्ययन, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्यता, क्रोधविहीनता, त्याग, शान्ति, छिद्रान्वेषण में अरूचि, समस्त जीवों का करूणा, लोभविहीनता, भद्रता,

लज्जा, संकल्प, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, ईर्ष्या तथा सम्मान की अभिलाषा से मुक्ति ये सारे दिव्य गुण हैं।

अभ्यास के प्रश्न विद्यार्थी स्वयं करें।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप – भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, 1990।
2. श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यसहित – गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. श्रीमद्भगवद्गीता – साधकसंजीवनी हिन्दी टीका – गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. श्रीमद्भगवद्गीता – अनुवाद किंकर विश्वानन्द व श्री गदाधरनारायण प्रकाशन – सनातनशास्त्र प्रकाशन, नई दिल्ली।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 गीता की मुख्य शिक्षाएँ

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 गीता की मुख्य शिक्षाएँ

5.3 सारांश

5.4 शब्दावली

5.5 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- ईश्वर के स्वरूप को जान सकेंगे।
- संतोष, शान्ति को प्राप्त करने के उपायों को पहचान पाऐंगे।
- संतुलित भोजन के बारे में जान सकेंगे।
- तीन प्रकार के तप को जान पाएगें।
- परिस्थितियों से सामना करना सीख सकेंगे।
- श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण का समझ पाएगें।
- आप संस्कृत भाषा की शब्दावली का स्मरण कर पाएगें।

5.1 प्रस्तावना

आपने पिछली इकाइयों में गीता के अभिप्राय व प्रयोजन, इसके अट्ठारह अध्यायों में वर्णित विषय–वस्तु का अध्ययन किया, इसके साथ ही गीता का सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक महत्त्व को ठीक से समझा। जैसा कि आप जानते है कि यह गीता सम्पूर्ण भारत का साहित्य ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य का अनमोल ग्रन्थ है। आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व श्री भगवान् ने अपने मित्र, सखा, अर्जुन को यह गीता सुनाई थी। लेकिन वर्तमान समाज के परिप्रेक्ष्य में आज सभी अर्जुन की भाँति मोहग्रस्त हो गए हैं मनुष्य अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गया है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि वह क्या करें या क्या न करें ? कैसा व्यवहार वह दूसरों के साथ करते है व कैसा भोजन ग्रहण करते हैं? आज का मनुष्य तनावग्रस्त होकर परिस्थितियों का सामना करने में भी असमर्थ है। तब जरूरत होती है भगवद्गीता के ज्ञान की। गीता को पढ़कर मनुष्य अपनी सभी परिस्थितियों में समान रह सकता है। प्रस्तुत इकाई में हम गीता में वर्णित प्रमुख शिक्षाओं का अध्ययन करेंगे और इन शिक्षाओं को ग्रहण करके जीवन को सुखी बनाएंगे व इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5.2 गीता की मुख्य शिक्षाएँ

गीता एक जीवन से सम्बन्धित शास्त्र है। गीता का मुख्य चमत्कार यह है कि यह जीवन की चिन्ताओं और तनावों को मुक्त करके जीवन को आनन्दित कर देती है। जीवन का दूसरा नाम है क्रियाशीलता। मनुष्य का सारा जीवन विविध प्रकार के कर्म करते हुए बीतता है। वही कार्य यदि ईश्वर निमित्त होकर किया जाए तो जीवन में सुख–शान्ति भर जाती है। जीवन जीने की कला का नाम गीता है। यह व्यक्ति को जीवन पथ पर कर्मों और नियमों पर चलने की प्रेरणा देती है। इसके 18 अध्यायों के 700 श्लोकों में हर समस्या का समाधान है। समस्याएँ कभी न कभी हर इंसान के सामने खड़ी हो जाती है। इसकी मुख्य शिक्षाएँ निम्नलिखित है –

1. निष्काम कर्म करना सिखाती है –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन' भगवद्गीता की यह पंक्ति सभी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमेशा कर्म करना चाहिए उसके फल के विषय में विचार नहीं करना चाहिए। मनुष्य हमेशा फल की इच्छा से कर्म करता है। जब वह पूर्ण नहीं होता तब वह दुःखी परेशान हो जाता है। गीता यही सिखाती है कि हमेशा निमित्त बनकर कर्म करना चाहिए। फल तो हर कर्म का मिलता हैं यदि ईश्वर के निमित्त होकर कर्म किया जाता है तो उसका फल भी अच्छा होता है। फल का ध्यान छोड़ते ही सारे तनाव व चिन्ताएं सब समाप्त हो जाती है।

2. क्रोध पर नियन्त्रण सिखाती है –

गीता में लिखा है कि क्रोध से भ्रम उत्पन्न होता है, भ्रम से बुद्धि व्यग्र हो जाती है और जब बुद्धि व्यग्र होती है तब तर्क नष्ट हो जाते है। तब मनुष्य का तर्क ही नष्ट हो जाता है तो व्यक्ति का पतन भी शुरू हो जाता है। इसलिए मनुष्य को हमेशा विवेक से कार्य लेना चाहिए। क्रोध नहीं करना चाहिए। क्योंकि क्रोध से मनुष्य के समस्त कार्य तो बिगड़ते ही है। बल्कि स्वयं का स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को क्रोध पर नियन्त्रण करना चाहिए।

3. मन व इन्द्रियों को वश में करना सिखाती है।

गीता में बताया है कि मन पर जीत पाना बहुत आवश्यक है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।। 6/6

जो व्यक्ति मन को जीत नहीं पाते, उन व्यक्तियों का मन उनके लिए शत्रु की भांति कार्य करता है। मन बहुत चंचल होता है। इसलिए मन को ईश्वर के प्रति लगाकर धीरे –धीरे मन को एकाग्र करके नियंत्रित कर सकते है। मन की दिशा इन्द्रियों के विषय से हटाकर परमात्मा की तरफ लगाना है। मन को दबाना नहीं है। क्योंकि मन का कार्य ही संकल्प–विकल्प करना है। इसलिए यदि हम उस भगवान् में अपना मन लगा देंगे तो हमारा मन हमसे मित्रवत् व्यवहार करेगा। अशांत मन को अभ्यास से वश में किया जा सकता है।

गीता के द्वितीय अध्याय में कृष्ण जी ने अर्जुन को बताया कि व्यक्ति को इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। इन्द्रियों का उपभोग से मनुष्य भौतिक संसार में सुख–दुःख का अनुभव करता है। इन्द्रियों के उपभोग से मनुष्य की अवनति

निश्चित है। आगे भगवान् कहते है कि मुझे प्राप्त करने का साधन है इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय से लौटा लाना। जो व्यक्ति इन्द्रियों को जीत लेता है ऐसा जितेन्द्रिय ही मुझे प्राप्त कर सकता है।

4. शरीर नश्वर है –

गीता में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि आत्मा अमर है यह शरीर विनाशी है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्र धारण करता है वैसे ही आत्मा एक शरीर छोड़ दूसरा शरीर ग्रहण कर लेती है और न ही कभी मृत्यु को प्राप्त करती है। शरीर और इस जगत् के सभी पदार्थों का नाश होना संभव है। इसलिए इस शरीर का मोह छोड़कर तुम मुझमें स्थित हो जाओं तो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।

5. अपने कर्त्तव्यों का बोध कराती है –

योगस्थः कुरू कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्चते।। 2/48

अर्थात् हे धनंजय (अर्जुन) तू कर्म न करने का आग्रह त्यागकर यश और अपयश के विषय समानबुद्धि होकर योगयुक्त होकर कर्म कर, इसी समान भाव को योग कहते हैं। धर्म का अर्थ कर्त्तव्यपालन से होता है। धर्म के नाम पर मनुष्य अक्सर सिर्फ कर्मकांड, पूजा–पाठ, तीर्थ–मन्दिरों तक सीमित रह जाते हैं। हमारे ग्रन्थों के कर्त्तव्यों को ही धर्म कहा है। भगवान् कहते है कि अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में कभी यश–अपयश और हानि–लाभ का विचार नहीं करना चाहिए। बुद्धि को सिर्फ अपने कर्त्तव्य यानी धर्म पर टिकाकर काम करना चाहिए। इससे बेहतर परिणाम मिलेंगे व मन में शान्ति रहेगी। आजकल मनुष्य अपने कर्त्तव्यों में फायदे व नुकसान को नापता रहता है, फिर अपने कर्त्तव्य को पूरा करने की सोचता है और बाद में नुकसान देखने पर टाल भी देता है। इसलिए गीता में कहा गया है कि लाभ–हानि आदि का विचार किए बिना अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

6. शान्ति, सफलता व संतोष का अनुभव कराती है –

विहाय कामान् यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकार स शान्तिमधिगच्छति।। 2/71

जो मनुष्य सभी इच्छाओं व कामनाओं का त्याग करके ममता रहित व अहंकार रहित होकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है उसे ही शान्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य को अपने मन में किसी भी प्रकार की इच्छा व कामना को नहीं रखना चाहिए। शान्ति प्राप्त करने के लिए सबसे पहले अपने मन से सभी इच्छाओं को हटाना चाहिए। मनुष्य जो भी कर्म करते हैं उसके साथ वह अपनी इच्छा भी रख देते हैं। अपनी पसंद के परिणाम की इच्छा उसे कमजोर बना देती है उस व्यक्ति का मन ज्यादा अशांत हो जाता है। जो व्यक्ति अपने मन से मोह तथा अहंकार आदि भावों को मिटाकर तन्मयता से अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है तभी मनुष्य शान्ति को प्राप्त करता है। वह हर प्रकार से सन्तुष्ट रहता है। तो उसे सफलता भी अवश्य प्राप्त होती है। जब व्यक्ति लाभ–हानि, जय–पराजय विचार किए बिना कर्म करता है तो उसे हर कर्म में संतोष का अनुभव होता है। वह भी

सन्तुष्ट रहता है दूसरे भी उससे सन्तुष्ट रहते हैं। एक सन्तुष्ट व्यक्ति जीवन के क्षेत्र में सफल होता है। वह अपना हर कर्म भगवान् को अर्पण करके करता है तो सफलता निश्चित होती है। कहा भी गया है –

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धो च कृत्वापि च निबध्यते।। 4/22

जो स्वतः होने वाले लाभ से सन्तुष्ट होता है, जो द्वन्द्व से मुक्त है और ईर्ष्या नहीं करता, जो सफलता और असफलता में स्थिर रहता है वह कभी कर्मबन्धन में नहीं बंधता। इस प्रकार गीता मनुष्य को सफलता व सन्तुष्टता प्रदान करती है।

7. श्रेष्ठ कर्म करना –

न बुद्धिभेद्वं जनयेदज्ञानां कर्म संङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। 3/26

ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि कर्मों में आसक्ति रखने वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करें किन्तु स्वयं भगवान् के स्वरूप में स्थित होता हुआ और सब कर्मों को अच्छी प्रकार से करता हुआ उनसे भी वैसे ही करावे।

गीता में कहा गया है कि मनुष्यों को ऐसे कर्म करने चाहिए कि दूसरों के लिए भी प्रेरणास्त्रोत बन सके। आजकल प्रतिस्पर्धा के युग में हर व्यक्ति आगे निकलना चाहता है। ऐसे में चतुर व्यक्ति कार्य तो पूरा कर लेते है लेकिन अपने साथी को उसी काम को टालने के लिए प्रोत्साहित करते हैं या काम के प्रति लापरवाही करते हैं। लेकिन ऐसे श्रेष्ठ कर्म करने चाहिए जो दूसरे भी वैसा ही कर्म करने के लिए प्रेरित हो। श्रेष्ठ कर्मों का फल भी श्रेष्ठ होता है। दूसरों को सही मार्ग बताना, गलत मार्ग पर जाने से रोकना, ईमानदारी से कार्य करना आदि कर्मों की श्रेष्ठता है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। 3/5

कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म किए बगैर नहीं रह सकता। सभी प्राणी प्रकृति के अधीन हो और प्रकृति अपने अनुसार हर प्राणी को कार्य करवाती है और उसके परिणाम भी देती है। यदि परिणाम अच्छे न आए तो, इस डर से यदि कर्म करना ही छोड़ दे तो बहुत बड़ी मूर्खता है। क्योंकि खाली बैठे रहना भी कर्म ही है। जिसका फल आर्थिक हानि, अपयश और समय की हानि के रूप में मिलता है। सभी जीव प्रकृति के अधीन है वो हमसे अपने अनुसार कर्म करवा ही लेती है। इसलिए कभी भी कर्म फल को सोचकर कर्म के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए। अपनी क्षमता और विवेक के आधार पर निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। फल की चिन्ता छोड़कर केवल निमित्त भाव से कर्म करना चाहिए।

8. गुरु का सम्मान करना सिखाती है –

गीता में यह शिक्षा मिलती है कि गुरु का सम्मान करना चाहिए। जीवन में कुछ सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है और जो स्वयं को ही गुरु मानता है वह एक मूर्ख व्यक्ति को ही शिष्य के रूप में पाता है। कुछ सीखने के लिए गुरु के पास जाना पड़ता है। जैसे कृष्ण जी ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया

वहाँ पर अर्जुन शिष्य के रूप में थे जो विनम्र भाव से सीख रहे थे। एक ऐसी आदर्श गुरु परम्परा होनी चाहिए जो गुरु का हर परिस्थिति में सम्मान करें। आज के शिष्य का गुरुओं के प्रति सम्मान न होने के कारण ही कुछ सीख नहीं पाते व कुछ ग्रहण भी नहीं करते। इसलिए गुरु को अपनाना व सम्मान अध्यात्म का भी प्रथम मूलभूत सिद्धान्त है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।। 4/34

9. ईश्वर के स्वरूप का स्मरण करना –

गीता हमें सिखाती है कि सदा ईश्वर का स्मरण करना चाहिए। जब ईश्वर को भूल जाते है तब कष्ट जीवन में आ जाते हैं और जब ईश्वर को याद करके उसके उपदेशों का पालन करते हैं तो जीवन में खुशियाँ आ जाती है। भगवान् की याद से व्यक्ति सुख में ज्यादा सुखी अनुभव नहीं करता और दुःख में ज्यादा दुःखी होता है। वह जीवन में आए उतार–चढ़ाव को निष्पक्ष देखता है। जब ईश्वर का स्मरण रहता हैं तब कर्मफल की आसक्ति भी नहीं रहती है। व्यक्ति के रिश्तेदार की मृत्यु पर भी वह शोक नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि आत्मा अजर–अमर–अविनाशी है। जन्म–मृत्यु स्वाभाविक प्रक्रिया है। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हो चुकी है उसका जन्म निश्चित है। भगवान् कहते भी हैं कि –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। 18/62

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार ये सब प्रकार से विभक्त प्रकृतियाँ है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वत्रमानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।। 4/11

अर्थात् हे अर्जुन ! जो मनुष्य मुझे जिस प्रकार से भजता है। जिस इच्छा से मेरा स्मरण करता है, उसी के अनुरूप मैं उसे फल प्रदान करता हूँ। सभी लोग सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुकरण करते हैं।

इस श्लोक के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण बताते हैं कि संसार में जो मनुष्य जैसा व्यवहार दूसरों के लिए करते हैं दूसरे भी उसी प्रकार का व्यवहार उसके साथ करते हैं। जैसे जो लोग मोक्ष के लिए भगवान् का स्मरण करते है उन्हें मोक्ष प्रदान करते है। जो किसी अन्य इच्छा से भगवान् को भजते है उनकी वह इच्छा भी भगवान् पूर्ण करते है। कंस ने हमेशा भगवान् को मृत्यु के रूप में भजा तो कंस को मृत्यु प्रदान हुई। कभी भी किसी का बुरा नहीं सोचना चाहिए क्योंकि जो सोचते हैं, चाहते है वही ही मिलता है। जैसा दूसरों के लिए करोगे वैसा स्वयं के लिए पाओगे इसलिए सदैव सभी का कल्याण सोचना चाहिए।

10. तनाव से मुक्त होना सिखाती है –

प्रकृति के विपरित कर्म करने से मनुष्य तनाव युक्त होता है। यह तनाव ही मनुष्य के विनाश का कारण बनता है। केवल धर्म और कर्म के मार्ग पर ही तनाव से

मुक्ति मिल सकती है। आज का मनुष्य बहुत ही तनाव युक्त जीवन जी रहा है। कर्म फल के प्रति आसक्ति, इच्छाओं की पूर्ति न होना, क्रोध, संयमित नहीं रहना तनाव का कारण है। यदि गीता को पढ़कर उसे जीवन में धारण किया जाए तो तनाव से मुक्ति मिल जाएगी और खुशी व प्रेम, शान्ति, सन्तुष्टि जीवन में आ जाएगी।

11. विनम्रता विकसित करना –

प्रत्येक मनुष्य को जीवन में प्रगतिशील रहने के लिए विनम्रता विकसित करना आवश्यक है। क्योंकि विनम्रता से व्यक्ति अपने जीवन में मिली शक्तियों और उपलब्धियों में मिथ्या अहंकार से बचता गया है। गीता से यही शिक्षा मिलती है कि अपने अन्दर विनम्र भाव धारण करना चाहिए। अर्जुन बहुत ही विनम्र था। उसने विनम्रता को धारण किया जो भगवान् ने भी उसका साथ दिया। विनम्रता ही व्यक्ति को जीवन में सफल बनाती है। विनम्रभाव के कारण अर्जुन का मोह दूर हुआ। भगवान् का साक्षात्कार हुआ। जीवन की हर समस्या का समाधान विनम्रता विकसित करके ही हो सकता है।

असफलता और अपनी कमजोरी स्वीकार करने के लिए बहुत साहस और विनम्रता की आवश्यकता होती है। जब तक मानव अपनी कमजोरी और असफलता को स्वीकार नहीं करते तब तक वह जीवन में सफल नहीं हो सकते। अर्जुन ने विनम्रता पूर्वक भगवान् से अपनी कमजोरी स्वीकार की तब भगवान् ने उसे गीता के माध्यम से समझाते हुए युद्ध के लिए प्रेरित किया तब अर्जुन ने सफलता प्राप्त की। इसलिए जब तक अपनी स्वयं की कमियों को नहीं स्वीकार करते तब तक किसी भी मार्गदर्शन को स्वीकार नहीं कर सकते और न ही कमजोरियों से ऊपर उठ सकते हैं।

12. संकल्प तथा आत्मविश्वास जगाती है –

गीता के अध्ययन से व्यक्ति में नए जोश का संचार होता है। वह नए आत्मविश्वास के साथ खड़ा होता हैं वह हर कार्य को नए ढंग से अच्छी रीति से पूर्ण करता है। जब अर्जुन का मोह दूर हुआ तब वह नए आत्मविश्वास के साथ संकल्प लेकर कहता है कि –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। 18/73

इस प्रकार जिसका मोह संशय खत्म हो गया होता है वह पूरे आत्मविश्वास के साथ कार्य करता है।

13. परिस्थितियों का सामना करना सिखाती है :–

गीता हमें शिक्षा देती है कि कितनी भी विकट परिस्थिति क्यों न आ जाए उसका सामना बड़े धैर्य और संयम से करना चाहिए। हर समस्या का कोई न कोई समाधान अवश्य होता है। जब व्यक्ति शान्त चित्त होकर धर्मपूर्वक परिस्थितियों का सामना करता है तो समस्याएँ भी पहाड़ से रूई के समान बन जाती है। क्योंकि सुख और दुःख का उदय होना और अस्त होना सर्दी और गर्मी की ऋतुओं के आने–जाने के समान है। इसलिए मनुष्य को उन्हें अविचल भाव से सहन करना सीखना चाहिए।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। 2/14

गीता मनुष्य को सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय में एक समान रहना सिखाती है। जब कोई भी कर्म फल के निमित्त नहीं किया जाता उसे भगवान् को अर्पित किया जाता है, तो मनुष्य सुख में ज्यादा सुखी नहीं रहता और दुःख में ज्यादा दुःखी नहीं रहता। वह समान भाव से कर्म को करता रहता है।

14. उत्तम शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग सिखाती है :–

उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग बहुत जरूरी है। योग से शरीर तो स्वस्थ रहता ही है मन भी स्वच्छ व स्वस्थ रहेगा। योग के द्वारा भौतिक व आध्यात्मिक दोनों सिद्धियाँ प्राप्त होती है। जो कपट में लगा रहता है वह अपने समय को ही व्यर्थ करता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि एकान्त स्थान में बताई गई विधि से आसीन होकर मन को संयमित करने का अभ्यास ही योग है। कहा भी गया है योगाभ्यास करने वाले को अपने शरीर, गर्दन तथा सिर को सीधा रखे और नाक के अगले सिरे पर दृष्टि लगानी चाहिए। इस प्रकार अविचलित तथा दमित मन से भयरहित विषयी जीवन से पूर्णतया मुक्त होकर हृदय में मेरा चिन्तन करें।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरं।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। 6/13
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।। 6/14

15. उचित समय पर उचित कार्य करना सिखाती है :–

जो व्यक्ति अपने खाने, सोने, आमोदप्रमोद तथा कार्य करने की आदत सही समय पर नहीं करते उस व्यक्ति की सभी प्रगति रूक जाती है। जिस समय जो कार्य करना है वह उसी समय करना चाहिए। ऐसा करने से चित्त और मन शान्त व प्रसन्न रहते हैं। कहा भी गया है –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। 6/17

16. संतुलित भोजन व नींद की उत्कृष्टता बताती है :–

संतुलित भोजन का अर्थ है कि न तो अधिक खाने वाला न ही कम खाने वाला। अधिक भोजन का अर्थ है कि शरीर और आत्मा को बनाए रखने के लिए आवश्यकता से अधिक खाना। मनुष्यों को मासांहार भोजन करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि प्रचुर मात्रा में प्रकृति ने अन्न, शाक, फल दिए है। ऐसे सादर भोजन करने वाले सतोगुणी कहे गए हैं। मासांहार तमोगुणी कहते है। मद्यपान, धूम्रपान व बिना भगवान् के भोग लगाए भोजन करना माना पाप खाने के समान है। कम भोजन करने का अर्थ है आवश्यकता से अधिक उपवास करना। इसलिए मनुष्यों को संतुलित भोजन ही करना चाहिए। नींद भी अधिक नहीं लेनी चाहिए। मनुष्य को प्रतिदिन छः घंटे से अधिक नहीं सोना चाहिए। जो व्यक्ति छः घंटे से अधिक सोता है व तमोगुणी व्यक्ति है। वह व्यक्ति आलसी

होता है। आवश्यकता से अधिक खाने पर नींद भी आवश्यकता से अधिक आती है। वह आलसी व सोते समय अनेक सपने देखेगा। गीता में भी श्लोक है –

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। 6/16

17. एकान्त में अभ्यास करना सिखाती है :–

मनुष्य को कोई भी नई चीज सीखनी हो तो उसका एकान्त में अभ्यास करना चाहिए। एकान्त में अभ्यास करने से कोई भी चीज अच्छे से सीखी जा सकती है। जिसका मन विचलित हो और जो आत्मसंयमी नहीं है वह ध्यान का अभ्यास भी नहीं कर सकता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह एकान्त में बैठकर ध्यान का अभ्यास करें। योगी को एकान्त स्थान में भूमि पर कुशा बिछा कर और उसे मृगछाला से ढक कर ऊपर से मुलायम वस्त्र बिछा कर वह आसन न तो बहुत ऊँचा हो न बहुत नीचा होना चाहिए। यह आसन पवित्र स्थान पर स्थित होना चाहिए। फिर दृढ़तापूर्वक बैठकर मन इन्द्रियों व कर्मों को वश में करते हुए मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके हृदय को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यास करे।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। 6/11
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।। 6/12

18. यज्ञ, तप एवं दान का मर्मत्व सिखाती है :–

सामान्यतया यज्ञ किसी प्रयोजन के लिए किया जाता है। जो यज्ञ बिना किसी इच्छा के शास्त्रों के निर्देशानुसार कर्त्तव्य समझकर किए जाते है तो वह मनुष्य सतोगुण को प्राप्त होता है। कुछ यज्ञ भौतिक लाभ के लिया गर्ववश भी किए जाते है। वह राजसी यज्ञ होता है। कुछ यज्ञ प्रसाद वितरण किए बिना वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किए बिना, पुरोहितों को दक्षिणा दिए बिना ही सम्पन्न कराते हैं। ऐसे यज्ञ से मानव समाज को कोई लाभ नहीं पहुँचता है। तपस्या भी तीन प्रकार की बताई गई है –

देवद्विजगुरूप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। 17/14
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। 17/15
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। 17/16

शारीरिक तपस्या, परमेश्वर, ब्राह्मणों, गुरु, माता–पिता जैसे गुरुजनों की पूजा करना तथा पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर की तपस्या है।

वाणी की तपस्या

सच बोलना, मधुर, हितकर तथा अन्यों को दुःखी न करने वाले वाक्य को बोलना ही वाणी की तपस्या है।

मन की तपस्या

संतोष, सरलता, गम्भीरता, आत्मसंयम एवं जीवन की शुद्धि ही मन की तपस्या है। मन से किसी के लिए भी बुरा न सोचना, हमेशा सकारात्मक रहना ही मन की तपस्या है। इसी प्रकार दान के बारे में बताते हुए कहते हैं कि जो दान कर्त्तव्य समझकर किया, प्रत्युपकार की आशा न रखते हुए उचित काल में उचित स्थान में तथा योग्य व्यक्ति को ही देना चाहिए। लेकिन कभी–कभी निर्धनों को दान करूणा पूर्वक दिया जाता है लेकिन यदि वह निर्धन योग्य नहीं है तो उस दान का फल न मिलकर पाप लगेगा। यदि दान किए गए रूपयों से वह शराब आदि नशे करता है तो वह दान नहीं कहा जाएगा। आज के युग में सर्वश्रेष्ठ दान भूखे को खाना खिलाना व प्यासे को पानी पिलाना है।

19. श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण बताती है :–

गीता यह बताती है कि प्रत्येक पुरुष को किस प्रकार के गुण अपनाना चाहिए ? जिससे अन्य व्यक्ति उसका अनुसरण कर सके। प्रत्येक मनुष्य इन निम्न गुणों को अपनाकर श्रेष्ठ पुरुष बन सकता है। निर्भयता, आत्मशुद्धि, दान आध्यात्मिक ज्ञान, आत्मसंयम, यज्ञपरायणता, तपस्या, सरलता, अहिंसा, सत्यता, क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, समस्त जीवों पर करुणा, भद्रतां, लज्जा, त्याग, शान्ति संकल्प, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता ये सभी दिव्य गुण हैं जिन्हें धारण करके पुरुष श्रेष्ठ पुरुष बन सकता है।

20. मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का उल्लेख करती है :–

मानव जीवन के चार पुरुषार्थ कहे गए है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य कहा गया है। जब मनुष्य धर्म करते हुए अर्थ और काम की पूर्ति करते है तो गीता व्यक्ति को मोक्ष की और प्रेरित करती है।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। 18/56

अर्थात् मेरा शुद्ध भक्त मेरे संरक्षण में समस्त प्रकार के कार्यों में संलग्न रहकर भी मेरी कृपा से नित्य तथा अविनाशी धाम को प्राप्त होता है। इस प्रकार सभी कार्य प्रभु अर्पण करके करें तो अविनाशी धाम, परमपद को पा सकता है।

मनुष्य का जब सांसारिक बन्धनों से मोह हट जाता है और इस मोहभंग की निवृत्ति के मार्ग की जानकारी न होने के कारण, वह अपने जीवन में भटक जाता है। वह द्वन्द्व व निराशा की स्थिति में पहुँच जाता है। ऐसी स्थिति में भगवद्गीता ही एकमात्र सहारा है जो मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रस्तुत करता है। मोक्ष प्राप्ति के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग का निरूपण करते है। वह निष्काम कर्मयोग की महत्ता पर बल देते है तथा ध्यान का अभ्यास करते हुए वैराग्य को प्राप्त करते हैं तथा श्रद्धायुक्त भक्ति करनी चाहिए। भगवान् कहते हैं कि इन तीनों मार्गों में से कोई भी मार्ग अपना कर मुझे प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् स्थितप्रज्ञ का विवेचन भी किया है। भगवान् कहते हैं कि हजारों में से कोई एक मुझे भजता है उन भजने वाले हजारों में से कोई एक मुझे प्राप्त करता है। इसलिए श्रद्धापूर्वक शास्त्रों में बताए गए आचरण को करते हुए जो मनुष्य

ईश्वर में ध्यान रखता हुआ निष्काम भाव से काम करते है, वह मोक्ष को ही प्राप्त करता है।

अतः कहा जा सकता है कि गीता प्रत्येक स्थिति में जीवन भर अनेक महत्वपूर्ण शिक्षाओं को देते हुए मनुष्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं मनुष्यों के जीवन में आने वाले अच्छे–बुरे अनुभव चाहे वह मानसिक हो शारीरिक हो व्यापारिक हो, सामाजिक हो, सुख–दुःख हो आदि सब में गीता ही सभी मनुष्यों की समस्याओं का समाधान करते हुए शान्ति प्रदान करती है। इस प्रकार भगवद्गीता का शाश्वत ज्ञान सत् व अखण्ड है। इसकी शिक्षाएँ मनुष्य के जीवन में उमंग व नया संचार कर देती है। कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है। गीता की शिक्षाएँ मनुष्यों के लिए एक औषधि के समान है यह गीता का ज्ञान मानव कल्याण के लिए ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार गीता की व्यापकता, प्रभाव व संस्कार मानव जीवन में असीमित व अनन्त है।

5.3 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् गीता का मुख्य शिक्षाओं का पता चल गया होगा। आपने जाना कि कैसे मनुष्य निष्काम कर्म को करता हुआ अपनी इन्द्रियों, मन को जीत सकता है। क्रोध और लोभ पर नियंत्रण रख सकता है। मनुष्य को शरीर से ममत्व निकाल देना चाहिए। क्योंकि यह शरीर नश्वर है आत्मा अमर है। अपने कर्त्तव्य कर्म को करता हुआ मनुष्य सुख, शान्ति, सन्तोष और सफलता को प्राप्त कर सकता है। कभी व्यक्ति को कर्म के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए। निष्काम कर्म करने का यह अर्थ नहीं है कि वह कर्म न करें क्योंकि कुछ न करना भी एक कर्म है। हमेशा ईश्वर का स्मरण करते हुए श्रेष्ठ कर्मों को करना चाहिए। सदा अपने गुरु का सम्मान करना चाहिए अपने गुरु के सामने अपनी कमजोरियों को स्वीकार करके विनम्र रहना चाहिए। ऐसा करके व्यक्ति तनाव से मुक्ति पा सकता है। श्रेष्ठ कर्म करता हुआ मानव हर परिस्थिति का सामना संकल्प तथा आत्मविश्वास से करता है। वह सुख–दुःख में समान रहता है। गीता यह भी सिखाती है कि कैसे संतुलित भोजन व नींद लेकर एकान्त के अभ्यास के द्वारा शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकते हैं। उचित समय पर कार्य को समाप्त करके अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सकते है।

1. बोध प्रश्न सही व गलत लिखिए।

1 जीवन का दूसरा नाम क्रियाशीलता है। ( )

2 हमेशा फल की चिन्ता करनी चाहिए। ( )

3 क्रोध से मनुष्य का पतन होता है। ( )

4 इन्द्रियों योग करने वाले को जितेन्द्रिय कहा जाता है। ( )

5 धर्म से अभिप्राय कर्मकाण्ड, पूजा, मन्दिर है। ( )

6 सभी प्राणी प्रकृति के अधीन है। ( )

2. निम्न प्रश्नों का उत्तर दीजिए ?

1. तनाव से मुक्ति कब मिल सकती है ?

.....

.....

.....

.....

.....

2. कर्मों की श्रेष्ठता कैसी होती है ?

.....

.....

.....

.....

3. मन व्यक्ति का मित्र व शुत्र कैसे है ?

.....

.....

.....

.....

4. परिस्थिति का सामना कैसे करना चाहिए ?

.....

.....

.....

.....

5. मनुष्यों को कम से कम कितने घण्टे सोना चाहिए ?

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

1 संतुलित नींद व भोजन कैसा होता है, बताइए ?

2 यज्ञ, तप कितने प्रकार का है विस्तार से समझाए ?

3 गीता की मुख्य शिक्षाओं का वर्णन कीजिए ?

4 श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण बताइए ?

5.4 शब्दावली

मृगशाला	–	मृग की छाल
कुशा	–	घास
आर्जवम्	–	सरलता
प्रज्ञ	–	पूज्य व्यक्तियों की

अनुद्वेगकर	–	दुःखी न करने वाले
सौम्यत्वम्	–	अन्यों के प्रति कपट का भाव न होना
विनिग्रह	–	नियन्त्रण
संश्रुद्धि	–	शुद्धिकरण
नात्यश्नतस्तु	–	अधिक खाने वाले का तो
एकान्तम	–	बिल्कुल
अनश्नतः	–	भोजन न करने वाला का
युक्ताहार	–	नियमित भोजन
काय	–	शरीर
ग्रीवम्	–	गर्दन को
सम्प्रेक्ष्य	–	देखकर
अनवलोकयन्	–	न देखते हुए
प्रशान्त	–	अविचलित
मात्रा–स्पर्शाः	–	इन्द्रियविषय
अपायिनः	–	जाना
अनित्याः	–	क्षणिक
तितिक्षस्व	–	सहन करने का प्रयत्न करो
यदृच्छा	–	स्वतः
विमत्सरः	–	ईर्ष्या रहित
असिद्धो	–	असफलता
मद्व्यापाश्रय	–	मेरे संरक्षण में
अवाप्नोति	–	प्राप्त करता है।

5.5 बोध अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. हाँ 2. नहीं 3. हाँ 4. नहीं 5. नहीं 6. हाँ

बोध प्रश्न – 2

1. जब प्रकृति के विपरित कर्म करने से मनुष्य तनाव युक्त होता है तब केवल निष्काम कर्म एवं धर्म के मार्ग पर चलकर ही तनाव से मुक्ति मिल सकती है और जीवन में खुशी, प्रेम, शान्ति व सन्तुष्टता आती है।
2. मनुष्य कर्मों में आसक्ति न रखकर जब कर्म फल का त्याग कर देता है तब वह अपने सारे कार्य ईश्वर को अर्पण करके करता है। फिर वह सुख और दुःख से प्रभावित नहीं होता। जीवन में सुख शान्ति व सन्तोष को धारण करता है, यही कर्मों की श्रेष्ठता है।

3. जिसने अपने मन को जीत लिया है उसके लिए मन सर्वश्रेष्ठ है किन्तु जिसने अपने मन को नहीं जीता उस के लिए मन सबसे बड़ा शत्रु बना रहेगा।
4. परिस्थितियों का सामना धैर्यता और संयम करना चाहिए क्योंकि हर समस्या का समाधान होता है यदि धैर्यपूर्वक संयम से परिस्थिति का सामना किया जाए तो उससे पार होना स्वाभाविक है।
5. मनुष्यों को कम से कम छः घण्टे सोना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न विद्यार्थी स्वयं करे।

5.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 गीता की चमत्कारी शिक्षा – डॉ० रामस्वरूप वशिष्ठ

2 श्रीमद्भगवद्गीता – डॉ० सरिता वशिष्ठ – आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स जयपुर

3 गीता रहस्य – कर्मयोगशास्त्र – लोकमान्य बालगंगाधर तिलक – अर्चना पब्लिकेशन, दिल्ली।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY